श्रावक जीवन योग्य

बारह व्रत का स्वरूप

संपादक और लेखक :

पंन्यास अरुणविजय महाराज

(राष्ट्र भाषा-वर्धा, साहित्य रत्न - प्रयाग,
न्याय - दर्शनाचार्य (M.A.) - बम्बई)

--- प्रकाशक ---

श्री महावीर विद्यार्थी कल्याण केन्द्र - बम्बई

तीर्थ यात्रा करने पधारिए--

क्या आप शान्ति प्रिय हैं ? शान्ति चाहते हैं ?........ क्या आप प्रकृति प्रेमी हैं ? प्रकृतिक सौंदर्य पसंद करते हैं ?...... क्या आप प्राकृतिक सौंदर्य से सुशोभित शांतवातावरण में साधना करना चाहते हैं ?..... तो

कृपया अवश्य पधारिए---

राजास्थान के गौरव समान, पाली जिल्ले की शोभा बढाने वाले, जैन धर्म के इतिहास की गौरव गाथा गा रहे -----

वि. सं. ३६० की साल का १६८६ वर्ष पुराने ---

श्री हथूण्डी राता महावीर स्वामी तीर्थ

स्टे. फालना, या जवाई बांध,

पो. बिजापुर..... वाया - बाली, राजस्थान

पिन - ३०६ ७०७. फोन :- ३१

यहां २ धर्मशाला, भोजन की व्यवस्था, अतिथिग्रह आदि सब प्रकार की सुविधा उपलब्ध है । एक बार जरूर पधारिए तीर्थ यात्रा का सुंदर लाभ उठाइए ।

ीवन योग्य

बारह व्रत का स्वरूप

संपादक और लेखक :

पंन्यास अरुणविजय महाराज

(राष्ट्र भाषा-वर्धा, साहित्य रत्न - प्रयाग, न्याय - दर्शनाचार्य (M.A.) - बम्बई)

प्रकाशक ---

श्री महावीर विद्यार्थी कल्याण केन्द्र - बम्बई

बारह व्रत का स्वरूप.

जैन गृहस्थ के लिए श्रावक बनने हेतु १२ व्रतों का विवेचन......

संपादक और लेखक ---

पंन्यास अरुणविजयजी गणि महाराज.

द्वितीय आवृत्ति. प्रति १०००.

वि. सं. २०४६. वीर सं. २५१६. इ.सं. १९९२

प्राप्ति स्थान ---

श्रीमान वालचंदजी

माणेक ट्रेडिंग कंपनी

चिकपेट, बेंगलोर - ५६० ०५३

प्रकाशक - एवं प्राप्ति स्थान

श्री महावीर विद्यार्थी कल्याण केन्द्र

३९, वसन्तविलास, २रा माला, डॉ. डी.डी. साठे मार्ग

वी. पी. रोड, प्रार्थना समाज, बम्बई - ४०० ००४.

❀ प्रस्तावना ❀

पंन्यास अरुणविजय महाराज.

⁂ व्रत की उपयोगिता ⁂

अनेक जन्मों की संचित पुण्याइ के अनुसार आज यह जन्म मनुष्यगति में मिला है । आर्य देश, आर्य जाति, आर्य कुल और उसमें भी वीतराग के शासन में सुंदर जन्म मिला है । उत्तम सर्वांग सुंदर देह मिला है । मोक्षगामी मुमुक्षु को एक-एक पल जीवन को किमति समझकर प्रमाद में न गुमाते हुए सदुपयोग करना है । जन्म जात कोई धर्मी नही है, कोई ज्ञानी विद्वान नही है । कोई शुद्ध श्रावक या साधु भी नही है । परन्तु आगे व्रतादि के पच्चक्खाण ग्रहण करने से श्रावक या साधु बनता है ।

जैसे हिन्दु धर्म में जन्म से जन्मे हुए बालक का आठवें वर्ष उपनयनादि संस्कार कराके उसे अब सच्चा ब्राह्मण बनाते हैं । द्विज का अर्थ ही यह है कि दुबारा जन्म । दो बार जन्म । प्रथम जन्म तो मातृ कुक्षी से था और दुसरा जन्म उपनयनादि संस्कार जन्य है । उसी तरह जैन कुल में जन्मा हुआ जीव जन्म से तो जैन, जाती से जैन,

पहचानमात्र के लिए तो जैन कहलाएगा । परन्तु वास्तव में वह सच्चा जैन तो तब कहलाएगा जब शुद्ध व्रतधारी श्रावक बन जाय । ब्राह्मणों के उपनयन संस्कार की तरह जैन धर्म में व्रतोच्चारण संस्कार है । श्रावक जीवन योग्य व्रतों का स्वीकार करके सच्चे अर्थ में जैन श्रावक बनना ।

तीर्थंकर प्रभु को केवलज्ञान होते ही वे सर्वज्ञ - सर्वदर्शी बने । तीर्थंकर भगवान ने समवसरण में (१) सर्व विरति और (२) देशविरति रूप दो प्रकार का विरति धर्म फरमाया। (१) सर्वथा सर्व सावद्य प्रवृत्ति आदि पापों का आजीवन त्याग करने वाला सर्व विरति धर्म [चारित्र-दीक्षा] को स्वीकारने वाला साधु-मुनि बना। जिसमें साधु-साध्वी दोनों आए । और जो सर्व-विरति धर्म स्वीकारने में असमर्थ-अक्षम रहे उनके लिए भगवान ने देश विरति-धर्म का स्वरूप बताया । देश=अर्थात् अल्प। सर्व की अपेक्षा कुछ कम । ऐसी पाप निवृत्ति रूप विरति-देश-विरति धर्म के व्रत-नियमों का पच्चक्खाण पूर्वक स्वीकार करनेवाले श्रावक-श्राविका कहलाए । अतः सर्वज्ञ तीर्थंकर भगवान ने चातुर्वर्ण वर्णाश्रम की जातिवाद के आधार पर व्यवस्था न करते हुए गुण और धर्म के

आधार पर १ साधु - २ साध्वी - ३ श्रावक - ४ श्राविका-रूप चतुर्विध संघ की व्यवस्था की है । यह संघ ही जंगम तीर्थ की प्रतिष्ठा पाया ।

बताए गए १८ पापस्थानों की निवृत्ति के आधार पर विरति धर्म है । अहिंसा - सत्य - अस्तेय - ब्रह्मचर्य अपरिग्रह के पांच महाव्रतों को स्वीकारनेवाले साधु होते है । परन्तु इन्ही महाव्रतों को संपूर्ण रूप से न स्वीकार करनेवाला, कुछ छूट - छाट के साथ, कुछ मर्यादा में अहिंसा - सत्यादि को ही अल्प (अणु) रूप में स्वीकारनेवाला अणुव्रतधारी सुश्रावक कहलाता है । श्रावक के लिए तीन मुख्य विभाग में १२ व्रत बताए गए है ।

१२ व्रत

५ अणुव्रत + ३ गुणव्रत + ४ शिक्षाव्रत

अहिंसा - सत्यादि ५ अणुव्रत है । अणु का अर्थ है छोटा, अल्प । साधु महात्मा के महाव्रतों के सामने ये ५ छोटे-अल्प प्रमाण में अणुव्रत है । दिक परिमाण, भोगोपभोग परिमाण तथा अनर्थदण्ड विरमण ये ३ गुणव्रत है । और सामायिक देशावकाशिक, पौषध तथा

अतिथि संविभाग आदि ये ४-शिक्षाव्रत है । अणुव्रत पापों को काटकर अणु= अणु रूप में कर देता है । गुणव्रत जीवन में गुणों को विकसाता है । और शिक्षा व्रत आत्मा को धर्म की शिक्षा देकर सुशिक्षित बनाता है । इस तरह १२ व्रत का धारक सुश्रावक होता है । गृहस्थीपने में से श्रावक बनने के लिए व्रतोच्चारण के संस्कार अनिवार्य है ।

इन १२ व्रतों के साथ सबसे पहले मिथ्यात्व का त्याग करके सम्यक्त्व (सच्ची - श्रद्धा) स्वीकारना भी अनिवार्य है । सम्यक्त्व का स्वरूप साधु या श्रावक दोनोंके लिए एक समान ही है । वीतरागी देव को ही भगवान, त्यागी को ही गुरु, और सर्वज्ञोपदिष्ट तत्व को धर्म माननेवाला ही शुद्ध सम्यक्त्वी श्रद्धालु कहलाएगा । अतः पहले सम्यक्त्व व्रत स्वीकारना फिर बारह ही व्रत स्वीकारना ।

मोक्ष मार्ग साधक और आत्म गुण स्वरूप जो मुख्य - दर्शन - ज्ञान - चारित्रादि रत्नत्रयी स्वरूप है, तद्वान् ही साधु है और श्रावक भी । आखिर मोक्ष मार्ग तो एक ही है । व्रतकी मर्यादा भले ही कम ज्यादा हो श्रावक शब्द की रचना ही कैसे बनी है ? यह देखिए ---

श्रा ---------- व ------- क = श्रावक

श्रद्धा ------- विवेक ---- क्रिया = ३ गुण

(दर्शन -------- ज्ञान = चारित्र) = रत्नत्रयी

श्रद्धा शब्द का 'श्र', विवेक शब्दका 'व', और क्रिया शब्द का 'क' इस तरह इनतीन शब्दों को लेकर उनके संयोजन से श्रावक शब्द बनाया गया है । अर्थात् यह श्रावक शब्द सम्यग् दर्शन=सम्यक्त्व अर्थात् श्रद्धा सम्यग् ज्ञान अर्थात् विवेक और सम्यग् चारित्र अर्थात् क्रिया रूप तीनों का धारक हो वह श्रावक कहलाता है। आखिर तो आत्मगुण की ही उपासना है । मोक्षमार्ग की ही साधना है । १४ गुणस्थानों में ४ - और ५ - चौथा-पांचवा गुणस्थान श्रावक का है । चौथे अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान परका श्रावक व्रत - पच्चक्खाण रहित केवल श्रद्धावंत ही है, सम्यक्त्वी ही है । जबकी १२ व्रतों को स्वीकारे, पच्चक्खाण करे तो वही पांचवे देशविरति - विरत सम्यक् दृष्टि गुणस्थानों में श्रावक चौथे पांचवे गुणस्थान का मालिक है । श्रद्धालु सम्यक्त्वी तथा व्रती है । आगे का छट्टा गुणस्थानक जो सर्वविरति - साधु का है उसका

ध्येय दृष्टि समक्ष रखने वाला, साधुता (दीक्षा) की प्राप्ति की सतत झंखना रखनेवाला, श्रावक दूसरे शब्दों में श्रमणोपासक कहलाता है । श्रमण=साधु, उपासक= साधक। अतः भविष्य में साधुत्व की भावना रखते हुए श्रावक को मोक्ष मार्ग की सीढि पर आगे बढना है ।

अतः इस मोक्ष मार्ग की सीढि रूप १४ गुणस्थानों में ४-५ गुणस्थान का क्या स्वरूप है । वहां व्रतादि कैसे होते है ? तथा सम्यक्त्व सहित १२ व्रतों का क्या स्वरूप है ? कैसे अतिचारों से बचना चाहिए ? आदि का स्वरूप इस लघु पुस्तिकामें संक्षेप से बताया है । शास्त्र के मूल श्लोकों के आधार पर सरल-सुगम भाषा में लिखा है । समझने के लिए छोटे-छोटे नियम भी दिये है । साधक इन्हें पढकर समझकर व्रतों का स्वीकार करके व्रतधारी शुद्ध श्रावक बनें। यही मनोभिलाषा । इस पुस्तक में लिखने के लिए १-१-पेज व्रत के साथ छोडे गए हैं । वहां व्रती लिख सकते हैं । अतः यह लघु पुस्तिका एक छोटी डायरी के रूप में सदा साथ रखी जा सकती है । सभी आनन्द-कामदेवादि जैसे महान आदर्श श्रावक बनें ।

पंन्यास अरुणविजय महाराज

पुस्तक प्रकाशन हेतु आर्थिक सहयोग

राजस्थान - पाली जिल्ले के, धनला गांव
निवासी श्रेष्ठीवर्य श्रीमान वालचंदजी,
महावीरचंदजी, जितेन्द्रकुमारजी, रीतेश,
रिंकेश आदि देसरला परिवार
वर्तमान में

माणेक ट्रेडिंग कंपनी

चिकपेट - बेंगलोर
की तरफ से

श्रीमान वालचंदजी की धर्मपत्नी
श्रीमति घीसीबाई के

उपधान तप, श्रावण-भादरवा का २ मासी तप, अट्ठाई, ६, ११, १५, उपवास आदि तपश्चर्या के उपलक्ष में इनकी तरफसे प्रस्तुत पुस्तिका छपाकर प्रसिद्ध की है । व्रत ग्रहणार्थ सभी को सप्रेम भेट.

णमोत्थुणं समणस्स भगवओ महावीरस्स

श्रावक जीवन योग्य

बारह व्रत का स्वरूप

सम्यक्त्व का स्वरूप

बारह व्रत स्वीकारने के पहले देव-गुरु और धर्म के उपर शुद्ध श्रद्धा धारण करनी चाहिए । अतः बारह व्रत से अतिरिक्त पहले स्मयक्त्व का स्वरूप बताते हैं ।

या देवे देवता बुद्धी र्गुरौ च गुरुतामतिः ।

धर्मे च धर्मधीर्शुद्धा सम्यक्त्वं तदुदीरितम् ।। (यो. शा.)

जो राग-द्वेष रहित शुद्ध वीतरागी-सर्वज्ञ देव (भगवान) है उसी में देवपने की अर्थात् भगवान मानने की बुद्धी, और पंचमहाव्रतधारी कंचन-कामिनि के त्यागी ऐसे जो गुरु है उन्हें ही गुरु मानने की बुद्धि, तथा सर्वज्ञ कथित शुद्ध धर्म को ही धर्म मानने की शुद्ध बुद्धि इसे ही सम्यक्त्व कहा है ।

देव तत्त्व- **देव**

लौकिक (रागादि युक्त) लोकोत्तर (रागादि रहित)

जगत् में लौकिक और लोकोत्तर दो प्रकार के देव है । जो राग-द्वेषादि अनेक दोषों से भरे हुए हों उन्हें वीतरागी अरिहंत के रूप में न मानना न पूजना । परन्तु " **अष्टादश दोष वर्जितो जिनः** " १८ दोष से जो रहित है वही जिन है। सर्वथा राग-द्वेष आदि पाप दोषों से रहित जो वीतरागी जिन भगवान है, अरि = आंतर शत्रु कर्म, हंताणं = उनका नाश करने वाले ऐसे अरिहंत भगवान, तथा मोक्षमार्ग प्ररूपक जो सर्वज्ञ तीर्थंकर परमात्मा है उन्हें ही आराध्य देव भगवान मानना-पूजना यही सम्यक्त्व है । देव शब्द देव गति के देवी-देवता के अर्थ में भी है, परन्तु यहां देव शब्द भगवान के अर्थ में है ।

जो देवाणवि देवो जं देवा पंजलि नमंसंति ।

तं देवदेवमहिअं सिरसा वंदे महावीरम् ।।

जो देवताओं के भी देव है, जिन्हें देवता भी अंजलिबद्ध

नमस्कार करते है, उस देवताओं के भी देव ईन्द्रादि से पूजे गए भगवान महावीरस्वामी को मष्तक झुका कर वंदन करता हुं । सिद्धाणं बुद्धाणं की इस गाथा में आप स्पष्ट देखेंगे कि देवताओं के भी पूज्य देवाधिदेव को भगवान मानने का कह है । अतः शुद्ध श्रद्धाधारी को महावीरस्वामी आदि २४ तीर्थंकरों को ही वीतरागी अरिहंत भगवान मानना चाहिए । और रागी-द्वेषी देव-देवीयों को भगवान के रूप में न मानें, न पूजें । २४ तीर्थंकर के यक्ष-यक्षिणी आदि भगवान नहीं है । वे तीर्थंकरों के रक्षक देव-देवी है । वे उनके शासन के रखवाले है । राजा के अंगरक्षक की तरह है । अतः उन्हें भगवान के रूप में नही मानना और नही पूजना चाहिए । " **तदसि जगति देवो वीतरागस्त्वमेव** " इसीलिए जगत् में एकमात्र तीर्थंकर सर्वज्ञ अरिहंत, भगवान ही वीतरागी देव है । ऐसी श्रद्धा रखनी सम्यक्त्व है । परमेश्वर परमात्मा परमेष्ठी, जिन, जिनेश्वर, वीतरागी, वीतराग, अरिहंत, तीर्थंकर, भगवान आदि समानार्थक एक सरीखे पर्यायवाची नाम है ।

गुरु तत्त्व- आत्मा के अज्ञानरूपी अन्धकार को मिटा-

नेवाला और ज्ञानाञ्जन करके नेत्रोन्मीलन करनेवाला गुरु तत्त्व है । अतः किसे गुरु मानना ? कैसे गुरु को गुरु मानना इसका भी विचार सम्यक्त्व में किया है ।

महाव्रतधारी धीरा भैक्ष मात्रोपजीविनः ।

सामायिकस्था धर्मोपदेशका गुरवो मता ।।

अहिंसा सत्यादि पांचमहाव्रत के धारक, धैर्यगुण संपन्न छ काय का आरंभ समारंभ न करते हुए मात्र भिक्षावृत्ति-गोचरी (माधुकरीवृत्ति) पर ही जीनेवाले, तथा आजीवन चारित्र (दीक्षा) धारी, सर्व विरति चारित्र में रहने वाले, यथार्थ धर्म के उपदेशक 'गुरु' माने जाते है । पंचिंदिअ सूत्र में ३६ गुणों के धारक को गुरु मानने का कहा है । वे इस प्रकार है ।

५ इन्द्रियों का संवरण करनेवाले ।

९ ब्रह्मचर्य की वाड का पालन करनेवाले ।

४ प्रकार के कषाय को छोडने वाले ।

५ महाव्रत से युक्त ।

५ प्रकार के आचारों को पालने में समर्थ ।

५ समिति का पालन करने वाले ।

३ गुप्ति का पालन करने वाले ।

३६ ऐसे छत्तीस गुणों के धारक मेरे गुरु है ।

अर्थात् गुरु पद पर बिराजमान ३६ गुण के धारक पंच महाव्रतधारी कंचन-कामिनि के त्यागी आजीवन चारित्रवान को ही गुरु मानना यही शुद्ध श्रद्धा है । इससे भिन्न सर्वेच्छावाले कंचन-कामिनि रखने वाले, सब कुछ खाने वाले, परिग्रहवाले, अब्रह्मचारी, मिथ्या उपदेश करने वाले को गुरु नही मानना ।

धर्म- सर्वज्ञ अरिहंत तीर्थंकर भगवान के द्वारा उपदिष्ट प्ररुपित तत्त्व को मानना व जानना - और पालना । यही धर्म है । "जिण पन्नत्तं तत्तं" जिनेश्वर के द्वारा प्ररुपित तत्त्व को मानना । सर्वज्ञ ने जो अर्थ से उपदेश दिया और गणधरों ने जिसे सूत्रबद्ध गूंथकर आगमरूप से प्रवाहित किया है । उसी की आज्ञा को मानना यह धर्म तत्व की श्रद्धा है । "जीवाइ नवपयत्थे जो जाणई तस्स होइ सम्मत्तं" जीव (आत्मा) अजीव,

पुण्य-पाप (कर्म), आश्रव, संवर, निर्जरा, बंध, और मोक्षादि नौं तत्वमय जिन धर्म को मानना यह धर्मगत श्रद्धा है । अतः सम्यग् श्रद्धा ऐसी होनी चाहिए कि-- "**जं जं जिणेहिं भाषियाइं तमेव निःसंकं सच्चं** " जो जो जिनेश्वर भगवंत ने कहा है वही शंका रहीत सत्य ही है, यह मानना शुद्ध दृढ श्रद्धा के सम्यक्त्व का स्वरूप है । अतः सर्वज्ञ तीर्थंकर परमात्मा को और उनके वचन - आज्ञादि को यथार्थ शुद्ध रूप में मानना यहि सम्यक्त्व है । और जैसा मानना वैसा ही वर्तन करना-आचरना चाहिए।

लोकोत्तर देव-गुरु-धर्म को लोकोत्तर-स्वरूप में ही मानना-जानना-पूजना आदि । तथा लोकोत्तर की उपासना स्तोत्रादि लोकोत्तर पद की प्राप्ति के लिए ही करनी । परन्तु लौकिक संसारिक सुखों के लिए नहीं करनी । और वैसे ही लौकिक सरागी देव-गुरु के पास लोकोत्तर चरम मोक्षादि की प्रार्थना भी नहीं करनी । जितनी देव-गुरु-धर्म तथा तत्वों पर श्रद्धा है उतनी ही कर्मसत्ता पर भी श्रद्धा रखनी चाहिए । क्यूंकि यह भी सर्वज्ञ ने बताई है । ईश्वर को जगत् का कर्ता-

सुखी-दुःखी आदि करने वाला है ऐसा मानना मिथ्यात्व है । स्वकृत कर्मानुसार ही सुख-दुःख मिलता है ।

सम्यक्तव की प्रार्थना--

अरिहंतो मह देवो, जावज्जीवं सुसाहुणो गुरुणो ।

जिण पन्नत्तं तत्तं, इअ सम्मत्तं मए गहिअं ।।

यावत् जीवन पर्यन्त - अर्थात् अंतिम श्वास तक, जब तक शरीर में जीव है, (जब तक जीव संसार में है) तब तक अरिहंत ही मेरे देव (भगवान) हैं, सुसाधु ही मेरे गुरु है और जिनोपदिष्ट तत्व ही मुझे तत्वस्वरूप में मान्य है, अर्थात् जिनेश्वर प्ररूपित तत्व ही मेरा धर्म है । यही सम्यक्त्व (श्रद्धा) मैंने ग्रहण किया है । यही सम्यक्त्वी की प्रार्थना होनी चाहिए और प्रतिज्ञा भी होनी चाहिए ।

सम्यक्त्व व्रत योग्य नियम---

१ प्रतिदिन प्रभु दर्शन करना, दर्शन किए बिना मुंह में पानी न डालना, सुबह - शाम या त्रिकाल दर्शन करने जिन

मंदिर जाना ।

२ स्वसामग्री से रोज प्रभु पूजा भाव से करनी । त्रिकाल पूजा करनी, बडी पूजा पढानी, महा पूजन आदि महोत्सव करना ।

३ सम्यग् दर्शन की निर्मलता के लिए वर्ष में १-२ बार कल्याणक भूमि आदि की तीर्थयात्रा करनी । तीर्थों में पूजा आदि करनी ।

४ सात क्षेत्र में यथाशक्ती धन वापरना ।

५ प्रतिदिन गुरु वंदन करना । त्रिकाल वंदन करना, गुरु का आदर सन्मान करना । उनकी सेवा - सुश्रुषा करनी । आहार - पानी - वस्त्र - पात्र आदि उपकरण वहेराना ।

६ नित्य जिन वाणी (प्रवचन) का श्रवण करना ।

७ चारित्र (दीक्षा) स्वीकारने की भावना रखनी । लेने वाले को अंतराय विघ्न न करना ।

८ प्रतिदिन महामंत्र का जाप-ध्यान करना । १-२-या १०-२० माला नवकार मंत्र की पक्की गिनना ।

९ जिन प्रतिमा भराना, जिन मंदिर बंधाना ।

१० देव - गुरु का नित्य दर्शन - वंदन-पूजन आदि करना। धर्मग्रन्थ का स्वाध्याय आदि करना। सम्यग् श्रद्धा के योग्य उपयोगी छोटे-छोटे नियम है, इनका पालन करना। सुविहित पर्वो को ही मानना। मिथ्या पर्व, लौकक पर्व न मानना, न मनाना।

कुछ बचने योग्य अतिचार---

संका-कंख-विगिच्छा-पसंस-तह संथवो कुलिंगीसु।

सम्मत्तस्स अइयारे, पडिक्कमे देवसिअं सव्वं॥

---जिनमत में शंका करने से, अन्य मत की अभिलाषा-आकांक्षा-करने से, धर्म के फल के विषय में संदेह करने से, अथवा साधु-संत के मलीन वस्त्रादि के प्रति दुर्गंछा रखने से, मिथ्यामति, कुलिंगीयों की प्रशंसा करने से, तथा उनके अति परिचय से सम्यक्त्व व्रत के अतिचारों का दिवस संबंधि प्रतिक्रमण करना चाहिए।

मिथ्यामत मान्य-रागी द्वेषी देव-देवी न मानना। स्त्री

संयुक्त शस्त्रास्त्र से युक्त देवों को देवीयों को वीतराग अरिहंत के रुप में नहीं मानना चाहिए । अन्यत्र देव-देवीयों की मानता, आखडी-बाधा नहीं माननी चाहिए ।

२४ जिन के यक्ष-यक्षिणि, शासन के अधिष्ठायक, तथा माणिभद्र वीर आदि को रक्षक देव के रूप में ही मानना ।

वीतराग सर्वज्ञ के संतान-प्राप्ती तथा शादि-धन आदि संबंधी मानता न मानें ।

चमत्कारों से आकर्षित होकर रागी-द्वेषी देव-देवी को न मानना न उनके तीर्थों में जाना, न मंदिरों में जाना, न मंत्र जापादि करना, न अनुष्ठान आदि करना ।

होली, बलेव, शील सातम नवरात्री आदि त्यौहारों को न मानना, न मनाना । परन्तु कर्मक्षय कारक-पर्युषण ज्ञान-पंचमी आदि पर्वों को मानना । आराधना ।

मंगलवार और शनिवार आदि न करना, फरालिया

उपवासआदि न करना, परन्तु पर्व तिथि की आराधना शुद्ध उपवास, निर्जल उपवास आदि से करनी ।

कुशास्त्र सीखना, पढना, मानना आदि दोषरूप है । याग भोगादि न करना कुंभस्नानादि न करना, श्रद्धा दान आदि न करना । इत्यादि सम्यक्त्व व्रत के अतिचारों से पूर्णतः बचने का ध्यान रखना । और शुद्ध श्रद्धा से रहना ।

अभिनिवेशिकादि पांच प्रकार के मिथ्यात्व का सही स्वरूप समझकर उससे बचना । मिथ्यात्वगत दोषों को लगने न देना । और सम्यक्त्व के शुद्ध यथार्थ स्वरूप को समझकर पालना । सभी भगवान एक ही है इसमें क्या है ? केवल नाम ही भिन्न-भिन्न है । वैसेही सभी धर्म एक ही है । इसमें क्या है ? कोई भेद नही है ? सभी धर्म मोक्ष में ही ले जाने वाले है ? केवल नाम भिन्न भिन्न है । चाहे ये धर्म आराधो या कोई भी धर्म आराधो । चाहे इस भगवान को मानो यो चाहे उस भगवान को मानो । अन्त में सभी एक ही है । ऐसी मिश्र वृत्ति भी नही रखनी चाहिए । क्योंकि यह भी मिथ्यात्व का ही स्वरूप है । अतः इस मिथ्यात्व से, मिथ्या विचार से जरूर

बचना चाहिए । सभी को मिश्र करके सच्चे और झूठे की एक खिचडी नही करनी चाहिए । आजकल के बन बैठे हुए अपने आपको भगवान मानने-मनाने वालों को किसी भी हालत में भगवान नहीं मानना चाहिए । मानें तो महामिथ्यात्व है । अन्य मती के भगवान-देव-देवी के प्रसाद आदि को भी नहीं लेना, नही खाना चाहिए । कुल देवता-गोत्र देवता आदि के सामने या अन्यत्र भी देव-देवी के सामने मानता (बाधा) के कारण अभक्ष्य नही चढाना । और पशुबलि, पशुयाग, नरबलि आदि का स्वप्न में भी विचार नही चाहिए । मदिरा-मांसादि कदापि न चढाए । लोकाचार और मात्र व्यावहारिकता के कारण घूमने-देखने जाना पडा तो जयणा रखें । औचित्य पालन की जयणा । लेकिन धर्म बुद्धि या श्रद्धा से न मानें, न पूजें । अनुकंपादि में भाग लेना पडे तो जयणा ।

इस तरह सम्यक्त्व व्रत का स्वरूप सम्यक् प्रकार से जानकर सत्य का शोधक बनना चाहिए । चरम ध्येय मोक्ष प्राप्ति से अरिहंतादि की उपासना करे । और मिथ्यात्व का त्याग करें । और आत्म कल्याण की साधना करें ।

व्रतधारी के लिखने के लिए

-पांच अणुव्रतों का स्वरूप-

पहला-अणुव्रत-स्थूल प्राणातिपात विरमण व्रत

निरागो द्विन्द्रियादिनां, संकल्पाच्चानपेक्षया ।

हिंसाया विरतिर्या सा, स्यादणुव्रतमादिमम् ।।

(धर्मसंग्रह)

निरपराधि ऐसे दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रियादि त्रस जीवों को दांत, चमडे, हड्डी, मांस आदि के लिए "मैं मारुं" इस संकल्प पूर्वक निष्कारण हिंसा करने का त्याग करना, अर्थात् उस जीव के द्रव्य प्राणों का वियोग करने रुप जो हिंसा है उसकी विरति - अर्थात् उस हिंसा से बचना, वह हिंसा न करने की प्रतिज्ञा करना ही प्रथम अणुव्रत-प्राणातिपात विरमण व्रत का स्वरूप है । प्राण- १० है । स्पर्शेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय चक्षुइन्द्रिय, कर्णेन्द्रिय ये ५ इन्द्रियां, मनबल, वचनबल, कायबल, ये ३ बल, श्वासोच्छ्वास और आयुष्य ये १० प्राण है । प्राण को धारण करने वाला प्राणी, उसमें स्थूल त्रस प्राणीओं के प्राणों का अतिपाप अर्थात्

नाश करने रूप हिंसा से बचना ही प्राणातिपात विरमण रूप अहिंसात्मक प्रथम अणुव्रत है । " **प्रमत्त योगात् प्राण व्यपरोपण हिंसा** " हिंसा के इस लक्षण से कहा है- प्रमादादि के कारण जीवों के प्राणीओं के प्राणों का वियोग करना ही हिंसा है ।

त्रस और स्थावर दो प्रकार के जीव हैं । त्रस में हलन चलन करने वाले द्विन्द्रियादि २,३,४ इन्द्रियवाले विकलेन्द्रिय जीव और पंचेन्द्रिय जीव गिने जाते हैं । उदाहरणार्थ अलसिए, जलो, कृमि आदि दोइन्द्रिय जीव है, चींटि, मकोडा, ईयल, धनेडा, खटमल, जू, लीक आदि तेइन्द्रिय जीव है, और मक्खी डांस, भंवरे बिच्छु आदि चउरिन्द्रय जीव है । तथा हाथी, घोडा, ऊंट, बैल, बकरी कुत्ता - बिल्ली, सांप नेवला, मेंढक आदि ये पंचेन्द्रिय तिर्यंच प्राणी है । तथा मनुष्य आदि ये भी पंचेन्द्रिय प्राणी है । इन स्थूल निरपराधी त्रस जीवों को जानबूझकर संकल्पपूर्वक मारने की बुद्धि से मारना यह हिंसा है । और न मारने की प्रतिज्ञा यह 'प्राणातिपात विरमण व्रत' रूप प्रथम अणुव्रत - अहिंसा का स्वरूप है ।

पृथ्वी - पानी - अग्नि - वायु - और वनस्पतिकाय ये पांच स्थावर (एकेन्द्रिय) जीव कहलाते है । इन स्थावर जीवों की सर्वथा हिंसा न करने की प्रतिज्ञा तो चारित्रवान महाव्रतधारी साधु ही कर सकता है । श्रावक इन स्थावर की सर्वथा हिंसा न करने का पच्चक्खाण नहीं कर सकता है । उपयोग पूर्वक इनकी जयणा पालता है । अतः प्रथम अणुव्रत में स्थावर जीवों की जयणा और त्रस जीवों को न मारने की प्रतिज्ञा है । अतः स्थूलप्राणातिपात विरमण व्रत कहलाता है। साधु भगवंतो के महाव्रत में यही व्रत सूक्ष्म से सर्व जीवों की सूक्ष्मतः हिंसा के त्याग पूर्वक होने से महाव्रत कहलाता है ।

श्रावक की मात्र सव्वा वसा (विश्वा) दया---

२० विश्वा जीव हिंसा

१० विश्वा सूक्ष्म जीवों की — **१० विश्वा स्थूल जीवों की**

(साधु के लिए)

१० विश्वा स्थूल जीवों की

संकल्प से (५ विश्वा) आरम्भ से (५ विश्वा)

अपराधी की हिंसा (२।। विश्वा) निरपराधी की हिंसा (२ ।। विश्वा)

सापेक्ष हिंसा (१। विश्वा) निरपेक्ष हिंसा (१। विश्वा)

१० स्थूल और+१० सूक्ष्म = २० विश्वा हिंसा का सर्वथा संपूर्ण रूप से त्याग करके पूर्ण अहिंसा का पालन तो संसार का त्यागी साधु ही कर सकता है । संसारी गृहस्थ १० विश्वा सूक्ष्म जीवों की हिंसा से नहीं बच सकता । अतः वह १० विश्वा स्थूल त्रस जीवों की हिंसा से बचने का विचार करता है । उसमें ५ विश्वा आरम्भ-समारंभ की हिंसा है । मकान बांधना, खेती करना, रसोई करना आदि आरंभ हिंसा से नही बच सकता । अब शेष ५ विश्वा में इसे मैं मारुं ऐसी

संकल्प हिंसा से श्रावक बच सकता है । संकल्प हिंसा में भी अपराधी और निरपराधी के दो भेद है । अपराधी को दण्ड देने आदि की हिंसा से नहीं बच सकता । अतः निरपराधी को न मारना ऐसा पच्चक्खाण करता है । इसमें भी सापेक्ष और निरपेक्ष दो भेद रहे । इसमें निरपराधी के २।। विश्वा में से १। विश्वा ही शेष रही । अतः श्रावक २० विश्वा दया में से १। विश्वा दया का ही पालन कर सकता है । अतः श्रावक के लिए प्रथमप्राणातीपात विरमण व्रत की प्रतिज्ञा यह हुई कि- " निरपराधी स्थूल त्रस जीवों को संकल्प पूर्वक निरपेक्ष बुद्धि से नही मारना " । संकल्प पूर्वक निरपराधी स्थूल त्रस जीवों की हिंसा से बचना । यह श्रावकोचित हिंसा के त्याग का अणुव्रतात्मक स्वरूप हुआ ।

प्रथम व्रत के मुख्य ५ अतिचार---

पढमे अणुव्वयम्मि, थूलगपाणाइवाय विरईओ ।

आयरिय मप्पसत्थे, इत्थ पमायप्पसंगेण ।।

वह-बंध-च्छविच्छेए-अइभारे-भत्तपाण वुच्छेए ।

पढम वयस्सऽइऽआरे-पडिक्कमे देवसिअं सव्वं ।।

---स्थूल प्राणातिपात विरमणरूप प्रथम अणुव्रत के पालने में अप्रशस्त राग-द्वेष-क्रोधादि के कारण या प्रमादादि के कारण जिस किसी भी अतिचारों का आचरण किया हो जैसे कि-वध-बंधादि चार ।

१ वध--राग द्वेष-लोभादिवश, स्वार्थ या प्रमादादि नोकर-चाकर मजूर-कामगारादि मनुष्य तथा गाय-भेंस-बैलादि पशुओं को निर्दयता पूर्वक मारना-पीटना या वध करना।

२ बंध--नोकर चाकर-मजूर-तथा पशुओं को गाढ बंधन से बांधना ।

३ छविच्छेद--मनुष्यों में नोकर चाकर-मजूरादि तथा पशुओं में घोडे, बैल-ऊंट आदि के शरीर के अंगोपांग का छेदन करना, काटना आदि ।

४ अतिभारारोपण-- लोभ या स्वार्थवश नोकर-मजदूर-या जानवर पर या उनके द्वारा खिंची जाती गाडी या टांगा आदि पर प्रमाण से ज्यादा बार (बोझा) रखना, फिर मारकर दौडाना ।

५ **भत्तपाण वुच्छेद**--भोजन का समय हो जाने पर भी मनुष्य-नोकर-चाकर-मजदूर तथा गाय-भैंस-घोडा आदि जानवरों को स्वार्थ वश भूखे रखना, पूरा भोजन न देना, कम खिलाना और ज्यादा काम लेना ये भी अतिचार है। साधक को ये पांचो अतिचार (दोष) अच्छी तरह जान कर इससे बचना चाहिए ।

खास सूचना-- सभी व्रतों में लगने वाले अतिचारों (दोष) का स्वरूप सभी व्रतों के साथ बताया गया है । पाप से बचने के लिए पाप का स्वरूप भी जानना जरूरी है । अतः साधक व्रती जीव अतिचारों को अच्छी तरह जानकर उनसे बचने का प्रयत्न करे । अतिचारों का सेवन न करे । और भूल से लगे हुए अतिचारों की क्षमा याचना करे । अतिचारों का सेवन भूल से भी पुनः न हो यह ध्यान रखे ।

जयणा (यतना)-- घर काम में, व्यापारादि में, रसोई आदि कार्य में, पृथ्वी, अप-तेउ-वायु, वनस्पति - त्रसका - यादि षट् काय (छ जीवनिकाय) जीवों की विशेषकर आरंभ-

समारंभादि कार्यों में स्थावर जीवों की हिंसा न हो, ज्यादा न हो इसकी पूरी जयणा (उपयोग) रखें । अन्जान में हुई जीव हिंसा का प्रायश्चित कर लेना चाहिए ।

प्रथम व्रत में पालने योग्य नियम ---

१ बिना छाना हुआ पानी न पीए । स्नानादि में भी न वापरना।

२ भोजन के बाद थाली नियमित धोकर पीए, झूठा न डाले।

३ पानी के घडे आदि में झूठा ग्लास पुनः न डालें । झूठा चमचा पुनः तपेले में न डाले ।

४ सडे हुए अनाज-लकडे, शाक सब्जी-फल-फूल-धान्य कठोल न वापरें । वासी न वापरें ।

५ हरी घास-पानी आदि में चलना नहीं । वृक्ष के पत्ते-फलादि तोडना नहीं ।

६ हिंसा ज्यादा हो ऐसी दवाइयां खेत में, घरादि में न छांटें दीमक लगी हुई पुस्तकें तथा लडकों पर दवाई न छांटे ।

७ पेस्टकंट्रोल कराके, या फ्लिट छांटकर जीवजन्तु न मारे । विषैली दवा, गोलीयां आदि न डालें जिससे अनेक जीव

जन्तु मरें ।

८ पुंजणी तथा घर में १० स्थानों पर चंदरवा रखें ।

९ चूल्हे में जलाने वाले लकडे तथा छाने आदि में छोटे बडे जीव की पहले से ही जयणा कर लेना चाहिए ।

१० देखे हुए सांप-बिच्छु आदिको ईंट पत्थर आदिसे न मारें

११ गिलोल पिस्तोल आदिसे निशान लगाकर पशु-पक्षी न मारें

१२ पिस्तोल, बंदूक, तलवार, छूरी-चाकू आदि घातक शस्त्रों से न किसी को मारें, और न ही मारने के लिए उपयोग करें ।

१३ किसी भी मनुष्य का पंचेद्रिय प्राणी का खून-वध न करें

१४ कैसे भी झगडे में तूझे खतम कर दूंगा, अब तो तुझे जिन्दा नहीं छोडूंगा, इत्यादि न बोलें, और न वैसा करें ।

१५ किसी को पैसा देकर या वश करके किसी का खून वधादि न करावें ।

१६ पशु-पक्षी मारकर उनके खाल की बनाई हुई टोपी फर-कोट, मोजे, हाथ के मोजे, पर्स, पाकीट आदि न वापरें ।

१७ कोड लिवर, लिवर एब्स्ट्रेक, आदि प्राणीज दवाइयां न

वापरें।

१८ प्राणी हिंसा जन्य सौन्दर्य प्रसाधनों का सर्वथा त्यागकरें ।

१९ कोशेटों (कीडों) से बनाया हुआ प्योर सिल्क-शुद्ध रेशम तथा उसके कपडे सर्वथा न वापरें ।

२० मक्खी, मच्छर, भंवरे, मेंढक आदि न मारें ।

२१ डॉक्टारादि की सलाह आदि कारणों से भी कहे जाने वाले शाकाहारी अंडे, या अंडो की बनी वस्तु भूल से भी न खाएं।

२२ मांसाहारी होटल में बिल्कुल न जाना, न ही मिश्र होटल में जाना, तथा मांसाहारी पदार्थ सर्वथा न खाएं ।

२३ प्राणीज वस्तुएं तथा प्राणीओं के अंग हाथीदांत, चमडा, हड्डी, नाखून सांप की काचली आदि न स्वयं वापरना, और न ही व्यापारादि करना ।

२४ अनन्त काय-कन्दमूल आलु-प्याज, लसून आदु, गाजर-मूला आदि न वापरें ।

२५ कोई किसी को मारता हो तो-जरूर बचावें , बिल्ली चूहे-कबूतरादि को मारती हो तो जरूर बचावें ।

२६ हिंसक-क्रूर वृत्ति वाले के साथ मित्रता-या व्यवहार न करें
२७ शस्त्रास्त्र का लेन-देन-व्यापार प्रयोगादि न करें ।

इस व्रत पालन का ध्येय-- छोटे बडे जीवों की रक्षा करना सीखें । जीव दया प्रेमी बनें । दयालु बनते जाएं । आत्मवत् सर्व भूतेषु की भावना को विकसाते जाएं । दया धर्म को फैलाते जाएं । जिनाज्ञा पालन करें । भक्षक मिटकर रक्षक बनें । अहिंसा परमो धर्म का झंडा लहराएं । हिंसा का मार्ग छोडकर अहिंसा के पथ पर प्रयाण करते हुए पूर्ण-शुद्ध-अहिंसक बनने का लक्ष्य साधे । अपराधी के प्रति भी दया रखें । आगे बढ़ते हुए सर्वथा त्यागी बनने की भावना रखें ।

२ अणुव्रत- स्थूल मृषावाद विरमण व्रत-

द्वितीयं कन्या-गौ भूम्यलीकानी न्यास निह्नवः ।

कूटसाक्ष्यं चेती पञ्चासत्येभ्यो विरतिर्व्रतम् ।।

--"कन्यालीक" आदि पांच प्रकार के असत्य वचन, अतिक्लिष्ट (दुष्ट) आशय, (अध्यवसाय) से बोले जाते हैं । अतः उन्हें बडा स्थूल असत्य कहे है । उनका त्याग करना ।

व्रतधारी के लिखने के लिए
(व्रतलेने वाले यहां अपनी विशेष बात लिखें)

यह मृषावाद विरमण अर्थात् असत्य त्याग रूप दुसरा अणुव्रत कहा है । मृषा का अर्थ है असत्य, (झूठ) और वाद का अर्थ है बोलना या कहना मृषावाद=अर्थात् असत्य बोलना, झूठा बोलना । जो सत्य स्वरूप है उससे विपरीत बोलना या विकृत करके बोलना । अनेक विषयों में असत्य बोला जाता है । लेकिन संसारी-गृहस्थ के लिए कन्या आदि संबधी मुख्य पांच असत्यों का त्याग करने रूप यह दूसरा स्थूलरूप से मृषावाद विरमण व्रत है । विरमण=बचना, छोडना-त्याग करना । अतः इस व्रत में असत्य-झूठ न बोलने की प्रतिज्ञा है । सर्वथा मूलतः संपूर्ण रूप से असत्य का आजीवन त्याग करने के लिए गृहस्थ समर्थ नहीं है । अतः स्थूल रूप से-मोटे तौर पर कन्यादि संबंधी पांच प्रकार के मुख्य असत्य न बोलें ऐसा यह व्रत कहता है ।

कन्या -गो-भूम्यलीकानि, न्यासापहरणं तथा ।

कूट साक्ष्यं च पञ्चेति, स्थूलासत्यान्यकीर्त्तयन् ।।

--कन्या (पुत्री), गाय-भैंसादि पशु, भूमि-जमिन, थापण, मिल्कत संबंधी तथा साक्षी देने आदि के विषय में

इन मुख्य पांच विषयों में असत्य नहीं बोलने की प्रतिज्ञा रूप यह स्थूल असत्य विरमण व्रत है । दुसरे अणुव्रत के रूप में कहा है ।

१ **कन्यालीक**-- कन्या (पुत्री) के विषय में झूठ बोलना यह कन्यालीक कहलाता है । स्वार्थ या मोह वश स्व कन्या या अन्य कन्या के सगाई-सगपण तथा शादी आदि के विषय में झूठ बोलना । अर्थात् १६ वर्ष की कन्या को १८-२० वर्ष की कहनी । या २५ वर्ष की कन्या को २०-२२ वर्ष की कहनी । या अनपढ को पढी लिखि कहनी विष कन्या को निर्विष कहनी, या निर्विष को विषवती कहनी, पराई को अपनी कहनी या अपनी को पराई कहनी, या स्व-पर की किसी भी कन्या के विषय में रूपवती होते हुए भी नहीं कहना, सुलक्षणी होते हुए नहीं है यह कहना, इत्यादि कन्या के रूप, जाति, गुण, शियल आदि संबंधी हेतु पूर्वक झूठ बोलना यह कन्यालिक कहलाता है । किसी के चारित्र-शियल पर असत्य आरोप आदि लगाते हुए बोलना यह भी मृषावाद है । कन्यालीक से सभी मनुष्यादि समझना।

२ **गवालीक**-- गाय-भैंसादि पशु के संबंध में झूठ बोलना ४
यह गवालीक है । अलीक-का अर्थ है-झूठ । दुध देने वाली गाय-भैंस को भी नहीं यह दुध देने वाली नहीं है ऐसा कहना, या अधिक दूध वाली को अल्प दूध वाली, छोटी आयु की गाय-भैंसादि को भी वृद्ध-बूढ्ढी कहकर बेचना तथा पराई को अपनी या अपनी को पराई कहना आदि गाय-भैंसादि संबंधी गवालीक प्रकार का मृषावाद है । गवालीक से गायादि सभी पशु समझना ।

३ **भूम्यलीक**-- भूमि आदि संबंधी झूठ, भूमि, जगह, जमीन, ५
जायदाद, खेत, बंगला, प्लोट, बगीचा, वाडी, दुकान, मकान, घर, हाट, हवेली, आदि संबंधी झूठ बोलना । पराई जमीन आदि अपनी कहना, अपनी को पराई कहना। न हो उसे भी अपनी कहना, अपने संबंधी की कहना, उखर भूमि को रसवती कहना, धन-सोना-चांदी के आभुषण, हीरा-मोती, संपत्ति-मिल्कत आदि संबंधी झूठ बोलना इत्यादि भूल्यलीक है।

४ **न्यासापहार (थापण मोसो)**-- थापण-अर्थात् पूंजी, संपत्ति, किसी ने अपनी थापण आपके यहां रखी हो और हम उस विश्वास का भंग करके मोह वश उसे अपनी ही बना लेवें। चल-चल तेरी कहां से आई, यह मेरी है । इत्यादि न्यासापहार संबंधी झूठ है । जमीन-मकान के पट्टे, दस्तावेज, गहने आदि की थापण के विषय में किसी विश्वासु के साथ विश्वासघात करने रूप मृषावाद का सेवन नहीं करना ।

५ **कूटसाक्षी**--- लेने-देने आदि के संबंध झूठी साक्षी देना । किसी दो व्यापारी आदि ने लेन-देन में आपको साक्षी बनाया हो, ऐसे विषय में कभी लांच-रिश्वत आदि लेकर बदल जाना, झूठ बोलना, भाषा-वचन में बदल कर देना और समय पर झूठी साक्षी देना-यह कूट साक्षी रूप मृषावाद है । इससे बचना । देव-गुरु-धर्म की सोगन नहीं खानी चाहिए । उपरोक्त ये पांच स्थूल-बडे झूठ के प्रकार है । श्रावक कम से कम इन पांच प्रकार के स्थूल मृषावाद से अवश्य बचें ।

दुसरे व्रत के ५ अतिचार---

सहसा-रहस्स-दारे-मोसुवएसे अ कूडलेहे अ ।

बीय वयस्सईयारे, पडिक्कमे देवसियं सव्वं ।।

---सहसाभ्याख्यान, रहोअभ्याख्यान, स्वदारा मन्त्रभेद, मृषोपदेश, और कुटलेख ये पांच प्रकार के अतिचार (दोष) दिन संबंधी लगे हो उनका में प्रतिक्रमण करता हुं ।

१ **सहसाअभ्याख्यान**--सहसा का अर्थ है-एकाएक-सहसात्कार-बिना विचारे एकाएक अभ्याख्यान अर्थात् आरोप कलंक, लगाना । तू चोर है । वेश्यागामी, परस्त्रीगामी दुराचारी है । इत्यादि अचानक कहना ।

२ **रहोअभ्याख्यान**--रहसि का अर्थ है एकान्त में । अडोश-पडोश की या किसी की भी गुप्त बातों को कह देना, प्रगट, करना, किसी की भी गुप्त पापों को जाहेर में प्रकट करना, आरोप लगाना आदि ।

३ **स्वदारा मन्त्र भेद**--स्व पत्नी की मार्मिक गुप्त बातें जो कि पत्नी ने पति में पूर्ण विश्वास रखकर दिल खोलकर कही दी हो उसे भू प्रसंग आने पर विश्वास भंग करके कह देना,

प्रकट करना, स्व पत्नी आदि की गुप्त मार्मिक बात को सबके बीच में कहना यह भी अतिचार है ।

४ **मृषोपदेश**--मृषा=झूठा उपदेश देना, दो के झगडे में, बीच में मध्यस्थी करके झूठी सलाह देना, गलत रस्ता बताना, झूठी शिक्षा, सत्य-सदाचार, न्याय-नीति के विपरीत झूठा उपदेश करना इत्यादि ।

५ **कूटलेख**-- झूठे दस्तावेज लिखना हिसाब, चोपडे, खाते झूठे लिखकर किसी के हस्ताक्षर, मुद्रा, मुहर, अक्षर आदि बनाकर अपने आप लिख देना, झूठा अर्थ लिखना, कम वेतन देकर ज्यादा, या ज्यादा वेतन ठहरा कर कम देना इत्यादि.... अतिचार है ।

उपर के पांच अतिचार मृषावाद विरमण व्रत में जो लगते है वे यहां बताए है । इसे जानकर छोडने का प्रयत्न करना चाहिए ।

मृषवाद त्याग संबंधी-नियम - वैसे तो आप मृषावाद का स्वरूप समझ ही गए होंगे फिर भी सुविधा के लिए इस

दूसरे व्रत में त्याज्य ऐसे छोटे-छोटे नियम नीचे लिखता हुं ।

१ देव-गुरु-धर्म के सोगन नहीं खाना ।

२ कन्या-स्त्री-पती-पत्नी संबंधी झूठ नहीं बोलना ।

३ किसी पर भी झूठा आरोप नहीं डालना ।

४ गाय-भैंस आदि पशु पक्षी संबंधी झूठ नहीं बोलना।

५ भूमि-मकान-बाग-बगीचे आदि संबंधी झूठ न बोलना ।

६ किसी को झूठी सलाह-शिक्षा न देनी ।

७ झूठे दस्तावेज-हिसाब आदि न लिखना ।

८ किसी के भी विषय में झूठी साक्षी न देनी ।

९ किसी की थापण विश्वासघात से दबा नहीं लेना ।

१० किसी के प्रति विश्वासघात नही करना ।

११ किसी की गुप्त बातों को प्रकट नहीं करना ।

१२ कभी भी किसी को गलत रस्ता नहीं बताना ।

१३ राज्यादि विरुद्ध झूठ नहीं बोलना ।

१४ किसी पर कलंक देने की रीत से झूठ नहीं बोलना ।

१५ पराई झूठी निंदा नहीं करनी ।

१६ अपने में गुण न होते हुए भी व्यर्थ प्रशंसा न करना ।

१७ अनर्थ होवे ऐसी भाषा न बोलते हुए मौन रहना ।

१८ लेन-देन के व्यवहार में असत्य का सेवन न करें ।

१६ हंसी-मजाक-विनोद में भी झूठ नहीं बोलना ।

२० किसी को भी किसी प्रकार की गाली नहीं देनी ।

२१ निरपराधी फस जाय, उसे सजा हो ऐसा झूठा आरोप न डालें ।

२२ दस्तावेज लेखादि लिखकर बदल नहीं जाना ।

२३ गरीबों का शोषण करते हुए ज्यादा वेतन तय करके कम न देना, और कम देकर ज्यादा न लिखवाना ।

२४ शास्त्र-सिद्धान्त के विपरीत न बोलना ।

२५ कोर्ट-कचेरी में भी झूठ न बोलना और झूठी साक्षी न देना।

२६ किसी पर झूठा केस न करना ।

२७ किसी के भी साथ दंभ-कपटाचरण न करना ।

२८ सत्य हो फिर भी कटु हो अप्रिय हो तो न बोले ।

दुसरे व्रत में जयणा-- किसी की रक्षा के लिए झूठ बोला जाय, किसी मरते हुए को बचाने के लिए झूठा बोलना पडे । एकाएक अचानक अनुपयोग दशा में असत्य मुंह से निकल जाय, भूल से झूठ बोला जाय, बातचित में, हंसी-मजाक में एकाएक झूठ बोला जाय अज्ञानता से न जानने के कारण असत्य निकल जाय आदि की क्षमा ।

ध्येय-- सत्यवादि बनने का ध्येय रखें । क्रोध, लोभ, भय, हास्यादि से भी झूठा न बोलना चाहिए । स्वधर्म की निंदा-अवहेलना, अपने कुल, खानदानी, प्रतिष्ठा की भी हानि न हो, लोक में प्रंशंसापात्र बनें, जन-जन के विश्वासपात्र बनें, हित-मित, पथ्य-सत्य बोलें । वचन सिद्धि की प्राप्ति हो, परोपकार कर सकें, अच्छे-सच्चे उपदेशक बन सके इत्यादि ध्येय से मृषावाद का त्याग करें । सत्य ही भगवान है अतः सत्य के उपासक बनें । सच्चे साधक बनने के लिए सत्य बोलना यह अपना ध्येय बनावें ।

३ अणुव्रत अदत्तादान विरमण व्रत---

परस्वग्रहणाच्चौर्य व्यपदेशनिबन्धनात् ।

या निवृत्तिस्तृतीय तत् प्रोचे सार्वैरणुव्रतम् ।।

--व्रतधारी के लिखने के लिए--

व्रत लेने वाले अपनी विशेष बात यहां लिखें

पर धन की चोरी करने से " यह चोर है इसने चोरी की है " ऐसा आरोप आए, अर्थात् लेने वाले को लोक चोर समझे । ऐसा पर धन नहीं चोरने की प्रतिज्ञा करनी इसे तीर्थंकर भगवंतो ने तीसरा अदत्तादान विरमण नामक अणु व्रत कहा है ।

दत्त=दिया हुआ, आदान=लेना, अर्थात् किसी के द्वारा दिया हुआ दान (वस्तु आदि) लेना यह दत्तादान कहलाता है। यह उचित व्यवहार है । धर्म हैं । जबकि निषेधवाची 'अ' अक्षर आगे लगाकर अ+दत्त+आदान=अदत्तादान अर्थात् किसी मालिक के द्वारा न दिया हो फिर भी ले लेना, जिसकी वस्तु है उस मालिक की आज्ञा के बिना दिये, उसकी आशा के बिना वस्तु लेनी यह अदत्तादान अर्थात् चोरी कहलाती है । इस स्तेयवृत्ति का त्याग करना, चोरी न करने की प्रतिज्ञा करनी यह अदत्तादान विरमण व्रत नामक तीसरा अणुव्रत है ।

४ प्रकार से अदत्तादान

स्वामी | जीव | तीर्थंकर | गुरु

१ सोना चांदी रूपया पैसा आदि वस्तुएं स्वयं मालिक के दिए बिना, उसकी आज्ञा के बिना चोरनी यह स्वामी अदत्त है । (२) वृक्ष पर से फल - पत्ते आदि सचित्त काटना, तोडना यह जीव अदत्त है । (३) तीर्थंकर भगवान की आज्ञा जिसमें नहीं है ऐसा वर्तन करना - जैसे आधाकर्मी आहार लेना आदि तीर्थंकर आदत्त है । उसी तरह अनन्तकाय अभक्ष्य आदि का भक्षण करने में तीर्थंकर की आज्ञा नहीं है और वह खाना अर्थात् तीर्थंकर की आज्ञा की चोरी करके आज्ञा विरुद्ध खाना यह तीर्थंकर अदत्त है । (४) गुरु महाराज को निमंत्रण दिए बिना वहेराए बिना वापरना आदि गुरु अदत्त है । इन चारों प्रकार के अदत्त से बचना ही व्रती का कर्तव्य है ।

इस व्रत में पालने योग्य छोटे नियम--

१ किसी के यहां चोरी करनी नहीं और करानी नहीं ।

२ किसी की गांठ-पेटी-अलमारी खोलनी नहीं ।

३ जेब काटना आदि न करना ।

४ ताला तोडकर वस्तु चोरनी नहीं ।

५ मालिक की आज्ञा के बिना वस्तु न चोरनी । लूंट फाट

करनी नहीं और करानी भी नहीं । और न ही किसी भी प्रकार की लूंट में भाग लेना ।

६ किसी की गिरि हुइ वस्तु की चोरी न करना ।

७ रस्ते में पडी वस्तु भी नहीं उठानी ।

८ निंद में सोए हुए की जेब में से चोरना नहीं ।

९ चोरी का माल सस्ते में नहीं खरीदना ।

१० आयकर विभाग की चोरी नहीं करनी ।

११ करचोरी नहीं करनी ।

१२ तराजु आदि तोल माप में कम देने की वृत्ति से चोरी नहीं करनी । कपडा आदि मापने में चोरी नहीं करनी ।

१३ राज्यदंड आए वैसी कोई चोरी नहीं करनी ।

१४ गिनति में संख्या की चोरी करके वस्तु नहीं चोरनी ।

१५ वस्तु में मिश्रण मिलावट कभी नहीं करनी ।

१६ चोरी करके लाई हुई वस्तु चोर यदि मुफ्त भी देवे तो न लेना, या कम दाम में भी न लेना ।

१७ चोरों को चोरी के काम में दिशा - मार्ग बताने आदि में

सहायता नहीं करना ।

१८ चोर के साथ किसी प्रकार के लेन देन का संबंध न रखना।

१६ तस्करी (दाण चोरी) (स्मग्लिंग) का काम बिल्कुल न करना।

२० किसी वस्तु के यहां से वहां, वहां से यहां करने रूप स्थानान्तर करना या छिपाना आदि का काम न करें ।

२१ चूंगी (जकात) की चोरी न करनी ।

तीसरे व्रत के पांच अतिचार

तेनाहडप्पओगे-तप्पडिरूवे-विरुद्धगमणे अ ।

कूडतूल कुडमाणे पडिक्कमे देवसिअं सव्वं ।।

१ **स्तेनाहृत**--चोर के द्वारा चोरी करके लाइ हुइ वस्तु जान बूझकर लेना, खरीदना आदि ।

२ **तस्कर प्रयोग**--चोरी करने वाले को किसी भी प्रकार की मदद करनी ।

३ **तत्प्रतिरूप व्यवहार**--तत्प्रतिरूप व्यवहार अर्थात् है उससे विपरीत करना, सच्ची में झूठी की, शुद्ध में अशुद्ध का, रंग-रसादि की समानता वाले पदार्थों की मिलावट-मिश्रण (भेल सेल) करना, तथा अच्छा नमुना दिखाकर खराब वस्तु देनी इत्यादि ।

४ विरुद्ध गमन- राज्य के कानुन के खिलाफ, व्यवहार करना चूंगी (जकात) महेसुल दिए बिना चुपचाप वस्तु ले जाना आदि ।

५ कुड तूल कुडमाणे--मान-माप-तोल कम ज्यादा रख कर वस्तु कम तोलनी, कम देनी, इत्यादि ।

उपरोक्त ये पांचो अतिचार तीसरे व्रत के हैं, वे जानकर न आचरने का प्रयत्न करना चाहिये । पाप से बचने की इच्छा वाला अतिचारों की जानकारी जरुर ले परन्तु भूल से भी न आचरे ।

जयणा-- घर-घर में, पति-पत्नि के संबंध में अति प्रेमादि के व्यवहार में, महेमानादि के रुप में किसी के धर आए और उनकी वस्तु हमारे साथ आ गई, इत्यादि की जयणा रखें। और वस्तु शिघ्र वापिस लौटा देना । निंद में, स्वप्न में चोरी के विचार आ जाय, अन्जान में भूल से किसी की वस्तु वापिस देनी रह गई (जब ख्याल आए तब तुरन्त लौटाना), भूल में किसी का जूता, कपडा आदि पहन लिया, या आदत वश टांकनी, दियासलाइ आदि मूल में बिना पूछे ले ली इत्यादि में

जयणा ।

ध्येय- दौर्भाग्यं प्रेष्यतां दास्य-मऽगच्छेदं दरिद्रताम् ।

अदत्तात्तफलं ज्ञात्वा, स्थूल स्तेयं बिवर्जयेत् ।।

चोर्य पापद्रुमस्येह, वध बन्धादिकं फलम् ।

जायते परलोक तु फलं नरक वेदना ।।

--दौर्भाग्य कमनशीबपने का उदय, नोकर-चाकर और दास-गुलाम बनने के दिन आए, तथा अंगोपांग काटने आदि का प्रसंग आए, जेल-सजा आदि का प्रसंग आए, दरिद्रता भिखारीपना- गरीबी आदि के फल जिस चोरी करने के पाप के फलस्वरूप आए उस स्थूल स्तेयवृत्ति (चोरी) का भी त्याग करना चाहिए । चोरी रूप पाप का यह एक ऐसा वृक्ष है जिसके वध, फांसी, जेल, बन्धादि इस जन्म में फल मिलते है। और परलोक में नरक में जाकर असह्य वेदना सागरोपमों तक सहन करने के दिन जाते हैं । अतः स्थूल रूप से भी चोरी-(अदत्तादान) न करने का व्रत स्विकारना ही हितावह है। इससे लोभ वृत्ति कम होगी और पुणिया श्रावक के जैसा बनने का ध्येय रखें ।

व्रतधारी के लिखने के लिए

(व्रतलेने वाले यहां अपनी विशेष बात लिखें)

४ अणुव्रत--स्थूल मैथुन विरमण व्रत

स्वकीयदारा सन्तोषो, वर्जनं वाऽन्ययोषिताम् ।

श्रमणोपासकानां तच्चतुर्थाणुव्रतं मतम् ।।

--स्व=अपनि, दारा=पत्नि, स्वपत्नि में ही संतोष मानना और अपनी से पराई स्त्रीयों के साथ मैथुन संबंध का सर्वथा त्याग करना यही श्रमणोपासक=अर्थात् श्रावक के योग्य चौथा अणुव्रत है । परस्त्री अर्थात् अन्य मनुष्यों की परिणीत या संगृहीत स्त्रीयां, देव गति के देवताओं की परिगृहीता या अपरिगृहिता देवियां, पशु जाति की मादाएं इत्यादि सभी के साथ मैथुन सेवन का सर्वथा त्याग करना यह श्रावक जीवन योग्य चतुर्थ अणुव्रत कहा है ।

चउत्थे अणुव्वयंमी निच्चं परदार गमण विरईओ ।

आयरिअमप्पसत्थे, इत्थ पमायप्पसंगेणं ।।

--नित्य परस्त्रीगमन के त्यागरूप इस चौथे अणुव्रत के विषय में यदि प्रमादादि के कारण अप्रशस्त भाव से कोई विपरीत आचरण हुआ हो तो मैं प्रतिक्रमण करता हुं, इस चौथे अणुव्रत में दो तीन तरीके से कहा गया है । जिससे इसका स्वरूप स्पष्ट

होगा ।--

(१) **परदारगमन विरई=अर्थात्** स्व से भिन्न जितनी पराई स्रीयां है उनके साथ गमन करने रूप मैथुन सेवन के संबंध का सर्वथा त्याग करना यह चौथा अणुव्रत हुआ ।

(२) **स्वदारा संतोष व्रत**-जगत की पराई सभी स्रीयों का त्याग करके अपनी ही स्री में संतोष मानना, स्वस्री के साथ मैथुन संबंध में संतोष मानना, परन्तु पराई स्री की इच्छा भी नहीं करनी । यह भी चौथा अणुव्रत का अर्थ है ।

(३) **मैथुन विरमण व्रत**-मैथुन काम क्रीडा, रति क्रिडा से विरक्त होने की भावना है । अन्य परस्रीयां हो या, जो किसीकी पत्नी नहीं है ऐसी वेश्याएं या कुमारिका कन्या आदि के साथ भी मैथुन संबंध का सर्वथा त्याग करना , जिस स्री के साथ आपने शादी की है वह आपकी अपनी खुद की स्री हूई, उसी के साथ देह संबंध करना और उसी में संतोष मानना । परन्तु परस्री के साथ देह संबंध कभी भी नहीं करना यह भीष्म प्रतिज्ञा इस चौथे अणुव्रत में ली जाती है ।

पुरुष प्रधान धर्म होने से यहां पुरुष को संबोधित करके पुरुष को उद्दिष्ट करके बात की जाती है । इसका मतलब यह नहीं है कि स्त्रीयों के लिए यह व्रत नहीं है । नहीं ऐसी बात नहीं है । स्त्रीयां इस व्रत में यह स्पष्ट समझें कि पर पुरुष के साथ देह संबंध, मैथुन संबंध का सर्वथा त्याग करना, और स्वपति में ही संतोष मानना यह संकल्प इस चौथे अणुव्रत में स्त्रीयां करे ।

चौथे व्रत के ५ अतिचार--

अपरिग्गहिआ इत्तर, अणंगविवाहतिव्व अणुरागे ।

चउत्थ वयस्सऽइआरे, पडिक्कमे देवसिअं सव्वं ।।

१ **अपरिगृहिता गमन--** जिसका कोई स्वामी नही है, जिस स्त्री को अभी किसी ने ग्रहण नही की है ऐसी कन्या, विधवा आदि के विषय में यह किसी की पराई स्त्री नहीं है ऐसा विचार करके विधवा-कन्या के साथ यदि संबंध करें तो परस्त्री त्यागी को यह अतिचार-पाप (दोष) लगता है । साथ ही सधवा, वेश्या, भाभी, आदि से भी सर्वथा देह संबंध त्याग की भीष्म प्रतिज्ञा करनी चाहिए ।

२ इत्वर परिगृहिता गमन-- अल्प काल के लिए, या कुछ अवधि तक किसी ने किराए से अपने वश करके रखी हुई वेश्या आदि पर स्त्री-"यह तो सब के उपभोग योग्य साधारण स्त्री है," इसमें क्या है ऐसा विचार करके उसके साथ देह संबंध करना, या स्वस्त्री के कुछ दिन के लिए पिता के घर या बाहर जाने आदि के निमित्त किसी स्त्री को प्रलोभन-पैसा आदि देकर कुछ काल तक रखनी और उससे देह संबंध करना यह इस प्रकार का अतिचार है । स्वदारा संतोषव्रती को ये दोनों अनाचार रुप पाप लगता है । उसी तरह पति के विदेश जाने, या बाहर दूर पर व्यापारादि के कारण जाने के निमित्त स्ववशीकृत परपुरुषादि के साथ रमण करने का सर्वथा त्याग करना ही चाहिए ।

३ अनंगक्रीडा-- अनंग का अर्थ है काम, अनंग क्रीडा अर्थात् काम क्रीडा, चुंबन-आलिंगन आदि काम की प्रदानता वाली क्रीडा, कोमोत्तेजक, कुचेष्टा, तथा परस्त्री के अंगोपांग विषय विकार की दृष्टि से देखना, तथा स्पर्शादि की इच्छा करना आदि स्व स्त्री से भिन्न किसी भी परस्त्री में ऐसी अनंगक्रीडा की भी इच्छा नहीं करनी चाहिए ।

४ परविवाह करण-- अपने पुत्र - पुत्री आदि को छोडकर पराए दुसरों के पुत्र - पुत्री आदि की शादी करानी यह भी व्रती के लिए अतिचार है ।

५ कामभोग तीव्राभिलाष-- विषय वासना का बहुत ज्यादा भडकना, तीव्र कामेच्छा जागृत होनी, बार बार काम क्रीडा के लिए उत्सुक होना, संतोष वृत्ति ही न हो और अमर्याद काम क्रीडा करनी, मन में भी सदा यह विकार चलते रहें । एक नहीं, देखी जाती अनेक कन्याओं, स्त्रीयों के साथ काम भोग की तीव्र इच्छा करना यह अतिचार है ।

चौथे अणुव्रत के व्रतधारी के लिये उपरोक्त पांचो अतिचार वर्ज है । पाप दोषरुप है । पुरुष को स्त्री के प्रति और उसी तरह स्त्रीयों को पुरुष के प्रति समझना चाहिए । तथा इन अतिचारों को सर्वथा छोडने चाहिये ।

चौथे अणुव्रत संबंधी छोटे छोटे नियम--

१ पराई स्त्री के साथ मैथुन सेवन कभी न करना ।

२ किसी भी विधवा के साथ देह संबंध कभी न करना ।

३ कुमारिका कन्या के साथ कभी भी मैथुन संबंध न करना।

४ किसी भी विधवा के साथ देह संबंध नहीं बांधना ।

५ किसी विधवा का पुनर्लग्न न करना व कराना ।

६ किसी कुमारिका या परस्त्री आदि पर बलात्कार न करना।

७ व्यभिचार सर्वथा न करने की आजीवन प्रतिज्ञा करना ।

८ वेश्यागमन न करने की आजीवन प्रतिज्ञा करना ।

९ परस्त्री से मैथुन संबंध न करने की आजीवन प्रतिज्ञा करना।

१० स्वस्त्री में मर्यादित काम प्रवृत्ति रखनी ।

११ २, ५, ७, ८, ११, १४, १५, ३० आदि पर्व तिथि को ब्रह्मचर्य पालना, तथा पर्युषण, औली आदि बडे पर्वों में जरूर ब्रह्मचर्य पालना ।

१२ उपवास आयंबिल आदि तप करने के दिन ब्रह्मचर्य पालना पूजन, महोत्सव अनुष्ठानादि में भी ।

१३ यात्रा करते समय तीर्थों में ब्रह्मचर्य पालना ।

१४ दिन में संपूर्ण ब्रह्मचर्य पालना ।

१५ छोटी आयु के बच्चों के बाल लग्न न करना, न कराना ।

१६ घर में भाभी, साली, मामी, बहन, बेटी आदि से भूल में भी कभी अब्रह्म सेवन की इच्छा न करनी । न कुकर्म करना । समलंगिक संबंध सर्वथा न करना ।

१७ निरोधादि साधनों का उपयोग कभी न करना, और ऐसे साधनों का उपयोग करके परस्त्री गमन कभी भी न करना।

१८ शादी के पहले तक नैष्ठिक ब्रह्मचर्य पालना ।

१९ किसी भी परिस्थिति में गर्भपात न करना, और न किसी का कराना ।

२० गर्भ हत्या के महापाप से आजीवन बचना ।

२१ स्त्री मित्र कभी भी न बनाना ।

२२ स्व पत्नि के सिवाय अन्य किसी के साथ भी प्रेम संबंध न जोडना, आलिंगनादि न करना ।

२३ समलिंगिक सम्बन्ध कभी भी न करना ।

२४ सृष्टि विरुद्ध कुकर्म (गंदी आदतों) का आजीवन त्याग करना। न कुकर्म में अन्य को फसाना ।

२५ स्व पुत्र-पौत्र की शादि सिवाय अन्य किसी के विवाह-शादी-सगाई आदि जोडना-कराना नहीं ।

२६ छिप-छिपकर स्त्री पुरूष के अंगोपांग तथा रति क्रिडा आदि न देखना, न दुसरे को दिखाना ।

२७ कोमोत्तेजक गंदा साहित्य कभी भी न पढना, "ब्लु फिल्म" आदि सर्वथा न देखने के पच्चक्खाण करना ।

२८ कामशास्त्र आदि संबंधी गंदे साहित्य कभी खरीदना और पढना नहीं ।

२९ विकार खानपान, गंदे चित्र, चलचित्र, आदि न देखना ।

३० कुछ समय के लिए किराए पर स्त्री, दासी, नोकरानी आदि रखकर देह संबंधादि न करना ।

३१ अपने से भिन्न धर्म, ज्ञाती और देश की स्त्री-कन्या आदि से शादी न करनी, न किसी की करानी ।

३२ एक स्त्री होते हुए दुसरी शादी न करनी, दुसरी पत्नी न करनी ।

३३ स्त्रीयां एक पतिव्रता धर्म पालें ।

३४ एक पत्नी होते हुए अन्य स्त्री से प्रेम संबंध न बांधे, प्रेमिका न बनावें ।

(सूचना-उपरोक्त सभी नियमों में पुरुष को लक्ष में लेकर बात की गई है वहां स्त्रीयां सभी पर पुरूष के संबंध में नियम करें ।)

जयणा--स्वप्न में ब्रह्मचर्य का भंग हो, स्वप्न दोष हो जाय, मन से किसी के प्रति खराब विचार आ जाय, मानसिक मैथुन हो जाय या नियमानुसार तिथि, दिन की गिनंति भूल जाय, या छोटी जगह में अन्यों के बीच या पास सोने में भूल से स्पर्श हो जाय आदि में जयणा । अचानक भूल से किसी के अंगोपांग दिख जाय तो जयणा ।

ध्येय-- हमारा ध्येय अखंड ब्रह्मचारी बनने का है आजीवन शुद्ध ब्रह्मचर्य पालने के पवित्र ध्येय से आगे बढना है । और उससे भी आगे साधुता और योगी अवस्था प्राप्त करने का अपना ध्येय है । ब्रह्म-का अर्थ है - आत्मा-परमात्मा, चर्य - उसमें लीन होना, ब्रह्म-आत्म गुणों का ही आचरण करना यह ब्रह्मचर्य है । ऐसी स्वगुणरमणता में पहुंचने का हमारा ध्येय है । अनादि अनन्त काल की यह मैथुन संज्ञा जो हमारे में पड़ी है, जिस मैथुन संज्ञा के कारण अनेक पाप कर्म बांधे, अनेक जन्म बिगाड़े है, उस मैथुन संज्ञा-काम की विषय-वासना का त्याग करने का ध्येय रखें यही ऊंचा ध्येय है, इन पवित्र ध्येय से इन व्रत-नियमों का पालन करें ।

आजीवन अखंड ब्रह्मचर्य- (संपूर्ण चतुर्थ व्रत)

४०-५० वर्ष की आयु के पहले या पश्चात भी विषय-वासना की वृत्ति का सर्वथा त्याग करके उत्तरावस्था में शुद्ध संपूर्ण ब्रह्मचर्य-पालन करने की प्रतिज्ञा । साधुवत् ब्रह्मचर्य पालने के लिए संपूर्ण ब्रह्मचर्य का पच्चक्खाण करें । संपूर्ण चतुर्थ व्रत स्वीकारें । स्व पत्नी होते हुए भी एक खाट-पलंग पर साथ नहीं सोना चाहिए । स्वतंत्र अलग दूर सोकर शुद्ध ब्रह्मचर्य पालें । विजय शेठ-और विजया शेठणी की तरह रहें । एक दुसरे की बिमारी में, अस्पताल आदि में सेवा करने की छूट है । ४०, ५० या ६० जिस आयु से मन दृढ हो जाय तो पति-पत्नि दोनों साथ में संपूर्ण आजीवन ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा स्वीकारें ।

५-अणुव्रत-स्थूल परिग्रह परिमाण व्रत

परिग्रहस्य कृत्स्नस्यामितस्य परिवर्जनात् ।

इच्छा परिमाणकृतिं जगदुः पञ्चमं व्रतम् ।।

--बहुत अत्यधिक संग्रह अर्थात् अपरिमित परिग्रह का परिमाण करना, अनन्त इच्छा का त्याग करना, या इच्छा को

व्रतधारी के लिखने के लिए
(व्रतलेने वाले यहां अपनी विशेष बात लिखें)

परिमित करना यह श्रावक धर्म योग्य पांचवा परिग्रह परिमाण स्वरूप अणुव्रत कहा है । इसी का दुसरा नाम "इच्छा परिमाण व्रत" भी रखा है । चूंकि इसमें इच्छा का त्याग करने की, मर्यादा बांधने की बात है । आज दिन तक जीव ने अमर्यादित रूप से पदार्थों का संग्रह हद से काफी ज्यादा किया है । न इच्छा पर नियंत्रण रहा, और न ही वस्तुओं के संग्रह पर । परिणाम यह आया कि अमाप वस्तुएं जीव इकट्ठी करता ही गया । वस्तुएं सभी जड़ तो भी संग्रह किया । इन सब पर मोह-ममत्व और मूर्छा बढती ही गई । और मेरी... मेरा... मेरा... करके तीव्र राग-और मोह से जीव ने कितने कर्म बांधे? ये सब पदार्थ संसार बढाने वाले अधिकरण बने । कई-छोटी-बडी वस्तुओं ने कई जीवों का संसार बिगाडा है, भव-और गति बिगाडी है । हकीकत में वस्तु नहीं परन्तु वस्तु के उपर जो गाढ मोह-ममत्व भाव है उससे भव-गति बिगडती है । एक तरह परिग्रह आरंभ-समारंभ आदि हिंसा का पाप कराता

है । ब्रह्मदत्त और सुभूम चक्रवर्ती आदि जैसे चक्रवर्ती सातवीं नरक में गए है । अतः संतोष होवे ही नहीं, इच्छा पूर्ण होवे ही नहीं, मोह-मूर्छा कम ही न हो और किंमती मनुष्य भव बिगड जाय । इससे बचने के लिए अनन्त ज्ञानी सर्वज्ञ प्रभु ने श्रावक के लिए परिग्रह (संग्रह) की मर्यादा करने के लिए, मोह-मूर्छा कम करने के लिए परिग्रह परिमाण का पांचवा व्रत बताया है । सर्वथा परिग्रह का त्याग ही करना है और निष्परिग्रही-अपरिग्रहि ही बनना है ऐसा नहीं है । वह तो महाव्रत साधु जीवन के लिए है । जबकि गृहस्थ के लिए तो ९ प्रकार के पदार्थों का परिमाण करना, कुछ मर्यादा बांधनी यह परिग्रह परिमाण रूप व्रत का स्वरूप बताया है ।

धण-धन्न-खित्त-वत्थु रूप्प-सुवन्ने अ-कुविअ परिमाणे।

दुपये-चउप्पयम्मि, पडिक्कमे देवसिअं सव्वम् ।।

--धन, धान्य, क्षेत्र (भूमि), वास्तु (घर-दुकानादि), चांदी, सोना, कांसा पित्तलादि धातु, द्विपद-मनुष्य नोकर-चाकर, चतुष्पद-गाय-बैलादि पशु इत्यादि ९ प्रकार के परिग्रह का त्याग करना है । इस त्याग करने रूप व्रत में कोई दोष

लगे हो दिन संबंधी कोई अतिचार लगे हो उसकी क्षमायाचना के साथ प्रतिक्रमण करता हुं ।

१ **धन**- रूपया-पैसा कितना रखना है? इसका प्रमाण रखें। तथा हीरा-मोती-झवेरात का भी प्रमाण करना ।

२ **धान्य**- १ वर्ष के लिए धान्य, अनाज-कठोल-कितना रखना इत्यादि प्रमाण करना ।

३ **क्षेत्र**- स्थावर मिल्कत में, प्लोट, जमीन, खेत, आदि का प्रमाण निश्चित करना ।

४ **वत्थु**- घर-दुकान, ओफीस, गोडाउन, गांव, इत्यादि की संख्या बांधनी ।

५ **रूप्य**- ६ **सुवर्ण**- चांदी-सोने की धातु कितने प्रमाण में रखनी? इनके बने हुए दागिने-गहने कितने रखने? या सब मिलाकर सोने-चांदी के गहने-बर्तन कुल कितने रूपए के स्वमालिकी के रखने? इस तरह प्रमाण निश्चित करना ।

७ **कुप्यादि**- सोने-चांदी सिवाय की धातु-कांसा, पित्तल, लोखन, कलाई, झींक, शीशा आदि धातु कितनी रखनी?

या कितने रूपए तक की रखनी? की मर्यादा बांधनी, या इनके बर्तनादि वस्तुओं की संख्या के रूप में मर्यादा बांधनी चाहिए।

८ **द्विपद**- द्वि=दो, पद=पैर, दो पैर वाले पक्षी घर में पिंजरे में बांधना रखना आदि का त्याग करना । नोकर चाकर, सेवक आदि की संख्या का प्रमाण बांधना ।

९ **चतुष्पद**- चारपैर वाले-पशु-जानवर कितने रखना? गाय, भेंस, हाथी, घोडा, ऊंट, बैल, पाडे, बकरी, कुत्ते, आदि जानवर कितनी संख्या में रखना यह प्रमाण निश्चित करना चाहिए ।

इत्यादि नौ से उपरोक्त प्रकार की वस्तुओं के परिग्रह का प्रमाण निश्चित करना यह इस पांचवे व्रत का स्वरूप बताया है । जिसमें स्व स्वामित्व अर्थात् अपना मालिकी हक्क आता हो वह अपना गिना जाता है । अतः अपने मालिकी हक्क में कितनी मर्यादा का परिग्रह रखना यह अपने को निर्णय करना चाहिए । अपने पास आज जितना है उसको ध्यान में लेते हुए, और गृहस्थ जीवन की अनिवार्य आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए जो आवश्यक हो उतनी ही मर्यादा बांधकर रखनी,

उतनी ही वस्तुएं रखनी । आज आपके २-४ लाख नहीं है, और आपने २-४ लाख की मर्यादा बांधी है, और भविष्य में मानों कि उतना यदि आपके पास हो गया तो फिर उस मर्यादा से अधिक आगे न रखना । धर्मादा में, सात क्षेत्रमें, परोपकारादि में वापरते जाना चाहिए । अपनी बांधी हुई मर्यादा का उल्लंघन करके तोडना नही । इस तरह यह व्रत स्वीकारें ।

इन ५ अतिचारों से बचें--

१ धन-धान्य प्रमाणातिक्रम, २ क्षेत्र-वास्तु प्रमाणातिक्रम, ३ रूप्य-सुवर्णप्रमाणातिक्रम, ४ कुप्यप्रमाणातिक्रम, ५ द्विपद चतुष्पद प्रमाणातिक्रम इन नौं ही प्रकार के परिग्रह में आपने जो-जो प्रमाण संख्या, रूपए या वस्तु के रूप में निश्चित किया हो उसका उल्लंघन नहीं होना चाहिए । धारणा का अतिक्रम अतिचार कहलाता है । अतः इन नौं ही प्रकार के परिग्रह के लिए पांच प्रकार के अतिचार बताए हैं । इनसे बचें । और अपनी धारणा न तोडें । धारणा पूरी होने के पहले ही वस्तु, या धन राशी दानादि शुभ कार्य में वापरें ।

जयणा-- अज्ञान वश, अन्जान में, भूल से धारी हुई संख्या २ के ऊपर आपकी धन राशी आदि-बढ गई, और उसका शुभ कार्य करने में उपयोग करने के आयोजन में देरी हुई भावना शुभ है वापरना चाहते हुए भी योजनाबद्ध शुभ आयोजन में वापरने में देरी हुई उसकी जयणा । वर्षान्त के समय गिनंति में ध्यान न रहा और संख्या बढ गई धारणा बढी तो उसकी जयणा, परन्तु शीघ्र प्रमाण करके अपनी मर्यादा निश्चित कर लें ।

ध्येय--मूर्छा महापरिग्रह है । परिग्रह से हिंसा और हिंसा से पुनः परिग्रह यह भयंकर विषचक्र चल रहा है । अनेक पापों की जड यह परिग्रह हैं । परिग्रह वृत्ति के कारण तृप्ति और संतोष नहीं आता है । अतः असंतुष्ट और अतृप्त तृष्णा से जीवन में सुख-शांती कभी भी नहीं प्रगट होती । अतः सर्वत्र प्रभु ने इस इच्छा परिणाम (संतोष) व्रत की संयोजना बताई है । मूर्छा-ममत्व से सैंकडों जन्म जीव के बिगडते है । छिद्र वाली नांव की तरह तीव्र मूर्छा से जीव संसार सागर में डूबता है । अतः धन-धान्यादि बाह्य परिग्रह और राग-द्वेष-

कषायादि आभ्यंतर परिग्रह का त्याग करने के लिए इस परिग्रह परिमाण व्रत का स्वीकार करके आनन्द-महाशतक आदि उत्कृष्ट १० श्रावक जैसे श्रावक बनें इस आदर्श ध्येय से सच्चे व्रती-साधक बनें ।

-व्रतधारी के लिखने के लिए-

(व्रत लेने वाले यहां अपनी धारणा लिखें)

१ धन (रूपए-हीरा मोती आदि जेवर)(संख्या में लिखें)

२ धान्य (अनाज-कठोल) (किलो में १ वर्ष के)

३ क्षेत्र (जमीन-प्लोट-जगह)

४ वास्तु (घर-दुकान, गोडाउन, बंगला-प्लोट) (स्थावर-मिल्कत)

५,६ रौप्य-सुवर्ण (सोने-चांदी के गहने-बर्तनादि)

७ कुप्य, तांबा, पित्तल, कांसा, झींक, लोखण आदि धातुओं के बर्तनादि वस्तुओं की मर्यादा

८ द्विपद (नोकर-चाकर-सेवक)

९ चतुष्पद-गाय, भेंस, घोडा, ऊंट, बकरी आदि जानवर की संख्या

(६) छट्ठा दिग् परिमाण व्रत

(पहला-गुणव्रत)

उर्ध्वाधस्तिर्यगाशासु, नियमो गमनस्य यः ।

आद्यं गुणव्रतं प्राहस्तद्दिग् विरमणाभिधम् ।।

ऊर्ध्व-अधो और तिर्छी दिशाओं तथा विदिशा आदि दशों दिशाओं में जाने के विषय में कुछ हद तक का नियम करना यह छट्ठा दिग्परिमाण व्रत या पहला गुणव्रत के बाद ३ गुणव्रत का जो स्वरूप बताया है उसमें दिग् (दिशा) परिमाण व्रत रूप इसको पहला गुणव्रत कहा है । धन-व्यापारादि के लोभ से जीव देश-विदेश चारों तरफ आशा का मारा भटक रहा है । लोभ का तो कोइ अन्त ही नहीं है । लोभ को संतोष भी कहां है? अति लोभ दशा के कारण जीव सारी दुनिया में घूमना चाहता है । सारी दुनिया का धन-इकट्ठा करना चाहता है । या निरर्थक घूमने-फिरने आदि के बहाने जाने-आने की प्रवृत्ति करना यह भी जीव की एक आदत है । ज्ञानी महापुरूष

कहते हैं कि समस्त विश्व अनन्त जीव सृष्टि से भरा हुआ है। अविरति में फसा हुआ जीव लोभादिवृत्ति के कारण दशों दिशाओं में घूमता-फिरता अनेक जीवों की हिंसा का भागीदार बनता है। अतः उन-उन दिशाओं में गमन करने का त्याग करके मर्यादा बांधना हितावह है । इसके लिए यह व्रत है । जिससे समुद्री मुसाफरी आदि का नियमन हो जाएगा ।

पूर्व-पश्चिम-उत्तर-दक्षिण ये चार मूल दिशाएं है । और ईसान, अग्नेय, नैऋत्य, और वायव्य ये चार विदिशा है तथा ऊर्ध्व (ऊपर) और अधो (पाताल में नीचे जाने की) दिशा। इस तरह कुल मिलाकर दस दिशाएं है । अब व्रतधारी या तो इन दशों दिशाओं में कहां तक कितने माइल या किलोमिटर जाना है? यह मर्यादा निश्चित करे । या किन दिशाओं में सर्वथा न जाना यह निश्चित करके उन दिशाओं में जाने का सर्वथा त्याग करें । और जिन दिशाओं में जाना है - तो उन दिशाओं में कहां तक कितने किलोमिटर जाना है? यह संख्या निश्चित करे ।

और यदि दिशाओं से आपको ख्याल न आता हो तो देशों के नाम से भी निर्णय करें । उदाहरणार्थ पहला नियम तो यह हुआ कि भारत देश के बाहर न जाना । और भारत देश के बाहर जाना भी पडे तो-अमुक-अमुक... देश में ही जाने की छूट इसके अतिरिक्त सभी देशों में न जाना यह पच्चक्खाण (त्याग) किया जाय !

जैसे व्यापारार्थ या पुत्र को मिलने आदि हेतु से, पुत्र के बुलाने के कारण या रोगोपचार-ओपरेशन आदि के कारण जाना पडे तो सिर्फ अमरीका या इंग्लैण्ड जाने की छूट परन्तु इसके सिवाय अन्य सभी देशों में जाने का त्याग ।

भारत देश में भारत की चारों तरफ की सीमा तक जाने की छूट परन्तु उसमें चातुर्मास में सर्वथा मेरे गांव या घर को छोडकर बाहर नहीं जाना है ऐसा नियम होता है, श्रेणिक जैसे मगध के सम्राट, श्री कृष्ण महाराजा, कुमारा पाल भूपाल आदि भी चातुर्मास के चार मास स्वदेश में अपनी राजधानी से बाहर नहीं जाते थे । चातुर्मास में बारिश आदि अनेक

कारणों से अनेक जीवों की ज्यादा हिंसा होती है । अतः चातुर्मास में तार्थयात्रा करने जाना भी निषेध है । शास्त्रों में अषाढ चातुर्मास में श्री शत्रुंजय महातीर्थ (पालीताणा) पर भी यात्रा के लिए जाने का निषेध किया गया है । अतः आराधक व्रती न जाए । कार्तिकी चौमासी के विदेश-या दिशा-विदिशाओं में जाना या अमुक माइल तक ही जाना ऐसा नियम ग्रहण करें।

छट्ठे व्रत के पांच अतिचार

गमणस्स उ परिमाणे, दिसासु उड्ढं अहे अ तिरिए य।

वुड्ढी सइ अन्तरद्धा, पढमंमि गुणव्वए निंदे ।

१ **उर्ध्व दिक् प्रमाणातिक्रम**- उपर अमुक.... कुछ माइलों तक ही जाना और उससे उपर न जाना ऐसा प्रमाण धारने के बाद भी वह प्रमाण या धारणा तूट जाय तो अतिचार लगता है ।

२ **अधोदिक् प्रमाणातिक्रम**- उपयोग के बिना अधो= नीचे की दिशा या देशो में जाने का प्रमाण या धारणा जो थी

उससे अधिक गए तो यह अतिचार लगता है ।

३ तिर्यक्‌दिक्‌ प्रमाणातिक्रम- पूर्व-पश्चिम-उत्तर और दक्षिण की दिशाओं में जाने की मर्यादा या उन दिशाओं के देश तथा विदेशो में अमुक देश या...... अमुक माइल तक जाने की जो धारणा थी उसका उल्लंघन करके अधिक जाने से यह अतिचार लगता है ।

४ क्षेत्र वृद्धि अतिचार- किसी क्षेत्र विशेष में १०० माइल तक ही जाने की मर्यादा निश्चित की थी और समय पडने पर जाते जाते और लोभ लगा और १०० मा. की मर्यादा तोड कर उस दिशा की मर्यादा बढाकर २००, ५०० माइल मन से बढा दी और चले गए तो, व्रत में धारी हुई मर्यादा की संख्या का उल्लंघन करने रूप यह अतिचार लगता है। अतः धारणा या प्रमाण में परिवर्तन न करें ।

५ स्मृत्यन्तर्धाम अतिचार-- स्मृत्यन्तर्धाम का अर्थ है विस्मृति हो जाना । भूल जाना कि मैने इस दिशा में कहां तक जाने की मर्यादा निश्चित की थी? १०० माइल चले जाने

के बाद मन में संशय खडा हुआ कि मैने कितनी धारणा रखी थी? और वह विस्मृति हो गई और फिर भी आगे ही आगे चलते ही गए तो यह अतिचार लगता है।

व्रतधारी आराधक उपरोक्त पांचो अतिचारों को समझकर उनसे अवश्य बचने का उपयोग रखें ।

इस व्रत में रखने योग्य नियम--

१ चातुर्मास में सर्वथा अपने रहने के गांव या शहर के बाहर न जाना ।

२ पर्युषण-औली आदि पर्वों में सर्वथा बाहर देशों में न जाना।

३ घूमने-फिरने-देखने हेतु देश /या विदेशों में नहीं जाना ।

४ व्यापारादि हेतु अमुक देश में जाने की छूट के सिवाय अन्य सभी देशों में न जाने के पच्चक्खाण ।

५ भारत को छोडकर बाहर विदेशों में न जाना ।

६ भारत को छोडकर विदेशों में जाकर वसवाट (बसना) नहीं करना ।

७ ऊर्ध्व-उपर की दिशा में नहीं जाना ।

८ अधो-नीचे की दिशा में नहीं जाना ।

९ भारत में कहां तक जाना ? यह नियम करें ।

१० चातुर्मास में शत्रुंजय आदि तीर्थों की यात्रा करने न जाना।

११ पुत्र-पुत्री या स्वजन-संबंधी के बुलाने पर, कार्य वश मिलने आदि के हेतु से उसी देश में जाना परन्तु उस देश के सिवाय अन्य सभी देशों में न जाना यह प्रतिज्ञा करनी ।

१२ समुद्री मुसाफरी न करनी ।

१३ ध्रुव प्रदेशों में सर्वथा न जाने के आजीवन पच्चक्खाण करना।

१४ विदेशों से शादी संबंध न जोडना ।

जयणा-- शोध-संशोधन या इतिहास के लिए गुरू आज्ञा लेकर जाने की जयणा । स्वदेश में चातुर्मासातिरिक्त काल में तीर्थयात्रा, तथा गुरुमहाराज के वंदनार्थ जाने की जयणा । देश-विदेश के पत्र, तार, पोष्ट, अखबार, आदि मंगाने, भेजने, पढने आदि की जयणा । अनिवार्य संयोगों में

ओपरेशन के हेतु से जाना पडे तो जयणा । विदेश में बसे हुए पुत्र-पुत्री की मृत्यु आदि प्रसंग पर जाने की जयणा।

दिक्गमन त्याग का ध्येय--

संसार सैकडों पापों से भरा हुआ है । साधक स्वलीन अवस्था में आगे बढे । अध्यात्म योग की साधना में आगे बढे। आरंभ-समारंभ आदि के सैकडों पापों से बचे । दुनिया भर की अविरति से बचकर विरति में आए । संसार में चारों तरफ चलते कारखाने, मीलें आदि लाखों आरंभ-समारंभ की महा हिंसाओं के पाप के निमित्त से बचने के ध्येय से यह व्रत स्वीकारना उपयोगी है । अविरति के पाप आश्रव से बचने के लिए यह व्रत स्वीकारना हितावह है । १८ पापस्थानों की प्रवृत्ति सीमित करके निष्पाप जीवन जीने का साध्य बनावें । आत्म सन्मुख बनने का लक्ष रखें ।

व्रतधारी के लिखने के लिए
(व्रत लेने वाले यहां अपनी विशेष बात लिखें)

७ वां भोगोपभोगपरिमाण व्रत

(दुसरा गुणव्रत)

भोगोपभोगयोः संख्या-विधानं यत् स्वशक्तितः ।

भोगोपभोगनामाख्यं, तद् द्वितीयं गुणव्रतम् ।।

भोग योग्य पदार्थ और उपभोग योग्य पदार्थों की संख्या का अपनी शक्ति के अनुसार प्रमाण निश्चित करना अर्थात् मर्यादा बांधना यह सातवां भोगोपभोग परिमाण व्रत है । यह दुसरा गुणव्रत है । भोग-का अर्थ है जिस वस्तु का एक ही बार भोग किया जाय (वापरी जाय) । जैसे भोजन, फूल, तंबोल, शरीर पर विलेपन, स्नान-पान योग्य पदार्थों का एक ही बार उपभोग किया जाता है फिर वे नष्ट हो जाते है । यह भोग कहलाता है । और जिसका बार-बार-अनेक बार उपयोग (भोग) किया जाता है उसे उपभोग कहा जाता है । जैसे वस्त्र, गहनें-सोना-चांदी-हीरे-मोती के गहने बर्तनादि, घर-मकान-बंगला, गाय, भेंस, बैलादि पशु आदि तथा काम वासना संतोषने के लिए स्त्री का भी बार-बार उपभोग किया जाता है । अतः

यह उपभोग कहलाता है । इल भोग और उपभोग योग्य पदार्थों का भोगवटा ने इस संसार में एकबार नहीं अनेक बार किया है । फिर भी तृप्ति संतोष नहीं हुआ हैं । और इन्ही के पीछे अनेक क्लेश-कषाय संघर्ष हुए हैं । अनेक पापकर्म करके जीव नरक आदि दुर्गतियों में गया है । अब समझकर इन भोग-उपभोग योग्य पदार्थों का त्याग करें, इनकी मर्यादा बांधे, परिमाण=प्रमाण निश्चित करें इसलिए भोगोपभोग परिमाण रूप यह सातवां व्रत बताया है । आत्मा के लिए यह गुणव्रत स्वरूप है । इसलिए इसे दुसरा गुणव्रत कहा है ।

मज्जंमि अ मंसंमि अ पुप्फे अ फले अ गंधमल्ले अ ।

उवभोगे-परिभोगे, बीअम्मि गुणव्वए निंदे ।।

मद्य, मांस, तथा २२ अभक्ष्य, ३२ अनन्तकाय, पुष्प फलादि पदार्थों के विषय में रखी हुई उपभोग (भोग) तथा परिभोग (उपभोग) रूप भोगोपभोग परिमाणात्मक द्वितीय गुणव्रत में लगे दोषों की मैं निंदा करता हुं । वंदित्तु की इस २० वी गाथा में भोग के अर्थ में उपभोग शब्द का प्रयोग किया है । अर्थात् पुष्प-फलादि जो एक बार भोग जाय वे । और

उपभोग के सामान्य अर्थ में यहां परिभोग शब्द का प्रयोग किया है ।

विशेषरूप से गृहस्थ जीवन में मौज-शोख, खान-पान आदि के निमित्त उपयोग में आने वाली अनेक वस्तुएं पाप कर्म का प्रबल बंध कराने वाली मुख्य वस्तुओं का सर्वथा त्याग तथा कुछ को परिमित-सीमित करने के लिए यह व्रत कह रहा है। ऐसा न हो कि जो शरीर काष्ट आदि के लिए न खाने योग्य अभक्ष्य पदार्थों का सेवन किया, जिससे आत्मा को भारी कर्म बंध हुआ और औत्मा को नरकादि गति में पाप की भारी सजा भुगतने जाना पड़ा । शरीर तो जड है । शरीर तो यहीं नष्ट हो जाता है वह कहां सजा भोगने नरक में आत्मा है ? नहीं। शरीर के कारण किए हुए पापों की सजा भोगने के लिए अकेली आत्मा को ही नरकादी तिर्यच की गति में जाना पडता है । ऐसे पदार्थ है-मदिरा-मांस-मक्खनादि २२ अभक्ष्य पदार्थ । अतः उनका त्याग करना ही हितावह है । यही यह व्रत कहता है ।

२२ अभक्ष्य

१ मध (शहद) (४ महाविगई)	२ मक्खन (Butter)
३ मदिरा (शराब)	४ मांस
५वटवृक्ष के फल(टेटा)(५ उदुंबरफल)	६पीपला के फल (टेटा)
७ कोठींबडा (काकउमरी)कालुंबर	८ पीपला की पीपडी (प्लक्ष जाती की)
९ उदुंबर फल(उंबर वृक्ष के फल (गुलर)	१० हिम (बरफ)
११ विष (जहर)	१२ करा
१३ सर्व प्रकार की मिट्टि	१४ रात्रि भोजन
१५ बहुबीज फल	१६ ३२ अनन्त काय
१७ बोल आचार	१८ द्विदल (विदल)
१९ बेंगन	२० अज्ञात-अन्जाने फल
२१ तुच्छ फल	२२ चलित रस

१ चार महाविगई- मध, मक्खन, मदिरा और मांस इन ४ को महा विगई का नाम दिया है । इसमें उस उस रंग

के असंख्य दो इन्द्रियादि त्रस जीवों की उत्पत्ति नाशरूप हिंसा होती है । विकार करने वाली है । असाध्य व्याधियां रोगादि कारक है अतः त्याज्य है । मध मदिरा (शराब) मांसादि की उत्पत्ति में, बनाने की क्रूर रीति में भी असंख्य जीवों की हिंसा का दोष है । मांस तो वैसे भी पंचेन्द्रिय की हिंसा के बिना प्राप्य भी नहीं है । अतः चारों त्याज्य है ।

२ पंच उदुंबर फल-- ५ से ९ तक के पांच उदुंबर फल सर्वथा त्याज्य है । ये जंगली फल हैं । इनमें छोटे छोटे अगणित बीज होते हैं । इन पांचों प्रकार के फलों में छोटे मच्छर के आकार के अति सूक्ष्म अनेक त्रस जीव होते हैं । अतः खाने से वे सभी मरेंगे, सब की हिंसा होगी । जीवन निर्वाह के लिए अनुपयोग होने से सर्वथा त्याज्य है ।

३ बरफ और करा (ICE)-- जहां पानी की एक बुंद में भी असंख्य अप्काय के एकेन्द्रिय जीव है । तथा चलते फिरते त्रस जीव भी अनेक है । आधुनिक विज्ञान ने सूक्ष्म दर्शक यंत्र से ३६४५० की संख्या तो गिनी है । अब पानी का बरफ बनने से वे सभी उस में दबकर मर जाएंगे । अतः हिंसा का त्याग करने की दृष्टि से ये त्याज्य है । वैसे ही आकाश

से बारिश में गीरे करे जो बरफ स्वरूप ही है उनका त्याग करें, अतः बरफ और बरफ के बने पदार्थ का भी त्याग करना चाहिए।

विष त्याग [Poison]--- जहर - विष मारक है । प्राण हरक है । खनिज विष, सोमल, अफीम, कूचला, धतुरा, वच्छनाग, आकडा आदि का वनस्पतिज विष, तथा सांप, बिच्छु, छिपकली, आदि का प्राणीज विष, तथा मानव सर्जित औषधियाओं, केमिकल का तथा मिश्र विष, एवं जन्तु मारने की विषैली दवाईयां आदि के विष का त्याग करने की प्रतिज्ञा करनी ।

सर्व प्रकार की मिट्टियां सचित्त होने से अभक्ष्य है ।

रात्री भोजन का त्याग-- रात को भोजन बनाना तथा खाना निषिद्ध है । सुर्यास्त के बाद असंख्य सूक्ष्म जीव जन्तु उत्पन्न होते हैं । उन्हें बिजली का प्रकाश बाधक नहीं लगता, अनेक संपातित जीवों की हिंसा भी होती है । अतः अहिंसक व्रतधारी को रात्रिभोजन छोडना चाहिए । शास्त्रकारों ने रात्रिभोजन को नरक का द्वार कहा है । रात को खाने से उल्लु, कौवा, बिल्ली आदि के जन्म मिलते हैं । जीव नरक

गति में जाता है । अनेक जीव हिंसा के कारण रात्री भोजन में ज्ञानीओं ने पाप कहा है । अतः त्याज्य है ।

बहुबीज अभक्ष्य-- जिसमें अगणित (बहुत) बीज हैं ऐसे बहुबीज पदार्थ जैसे-हरा अंजीर, सुखा अंजीर, खसखस, पेरु पंपोटा, करंमदे, टीमरु, कोठीबडी, बेंगनादि, राजगरों, पटोल, रींगणां आदि असंख्य अगणित बीजों वाले पदार्थ होने से त्याज्य है । अन्य त्रस जीवोंकी हिंसा होने से त्याज्य है ।

संधाण (बोल) आचार-- अनेक वस्तुओं के अनेक प्रकार के आचार बनाए जाते है । जीभ के स्वाद के लिए आचार का सेवन बहुत लोग करते है । परन्तु सभी आचार को अभक्ष्य नहीं कहा है । जो बोल (संधाण) आचार हैं वे त्याज्य है । जैसे आम्रवेल, कच्चे आम (केरी) का, पाडल का, नींबु का, गुंदा, करडा, करमदे, ककडी, डाला, हरी-काली मिर्च, चिभडा, हरी मिर्च आदि के तथा कई लोग अनन्तकाय के भी आचार बनाते है । जैसे-अदरक, हरी हलदी, गरमर, गाजर, कुंवार, मोथ आदि के भी कई प्रकार के आचार बनाते है, पंचुदुम्बर फल, हरा बेल फल, वांस के मूल के, आदि सैकडों जाति के आचार

बनाते है । ये आचार १-२ वर्ष तक भी रखते हैं । अतः बनाते समय निमक के पानी में करके धूप में सूखाकर कडक किए हुए हो । किसी मुरब्बे आदि में तीन तार की शक्कर की चासनी हो, उन आचारों में किसी भी प्रकार के धान्य कटोल आदि का मिश्रण न हो तो ही वे वर्ष भर रख सकते हैं । वरना उसमें जीवों की उत्पत्ति हो जाती है । अनन्तकाय की असंख्य (फुलण) छा जाती है । फिर वे अभक्ष्य कहे जाते है। अतः जीभ के स्वाद के पीछे असंख्य जीवों की हिंसा का पाप सिर पर लेकर दुगति में क्यों जाना ?

१७ द्विदल (विदल) अभक्ष्य - द्वि=दो, दल=भाग । कठोल में जिनके दो भाग होते है वे द्विदल कहलाते है । जैसे मूंग, उडीद, मटर, तूवर चने, आदि के दो भाग (दल) होकर वे दाल के रूप में बनते हैं अतः उन्हें या कठोल के बने हुए या कठोल मिश्रित पदार्थों को कच्चे दही=दूध=छाछ-लस्सी के साथ यदि खाया जाय तो उनके मिश्रित होते ही उनमें असंख्य दोइन्द्रिय त्रस जीवों की उत्पत्ति होती है । फिर खाने से हिंसा होगी । अतः द्विदल अभक्ष्य हैं । अतः भोजन में साथ ही कच्चे दही-छाछ-लस्सी आदि खाना वर्ज्य है । जैसे खिचडी,

दाल, भजिए, कठोल की सब्जी आदि के साथ कच्चा दही, छाछ-लस्सी खाना वर्ज्य है । अभक्ष्य है। लेकिन दही-छाछ लस्सी भी पूरी तरह गरम किया हुआ हो, तो खाने में दोष नहीं है । दहींवडा में दही और वडे दोनों गरम है । अतः खा सकते है । यह समझकर द्विदल के अभक्ष्य का भी त्याग करें ।

१७ बैंगन (रींगणा) अभक्ष्य-- बैंगन-सर्व जाति के (रींगणा) अभक्ष्य है । एक तो बैंगन में बहु संख्या में बीज हैं। तथा उपर की टोपी में सूक्ष्म त्रस जीवों की संख्या भी काफी ज्यादा है । तथा यह अतिविकारी, तामसी होने से भी वर्ज्य है । न खाया जाय । आरोग्य की दृष्टि से भी हानिकारक है।

१८ अन्जाने फल न खाएं-- जंगल में या अन्यत्र कई ऐसे फल मिल जाएं जो अन्जाने-अज्ञान फल हो, जिनके नाम, जाति तथा-गुण-दोष आदि प्रसिद्ध न हो, जो लोक व्यवहार में खाने में प्रचलित - प्रसिद्ध न हो ऐसे किंपाक आदि के फल वर्ज्य

है । किंपाक जंगली फल है । परन्तु खाते ही मृत्यु होती है। तथा जहरीले-विषैले फल भी वर्ज्य है । अतः इसका त्याग करें।

२० **तुच्छफल अभक्ष्य**-- जो असार है, तृप्तिकारक नहीं है, कई फल खाने के बावजुद भी न पेट भरे, न शक्ति आए । और खाना थोडा सा नाम मात्र, तथा फेंकना दुगुना हो ऐसे तुच्छ फलों को अभक्ष्य कहा गया है । उदाहरणार्थ- चनी बेर, पीलु, पीचु, लघुबदर, बदरीफल, गुंदी-छोटी-बडी, ईमली, केम्होर, जांबु आदि में बीज बडे-बडे फेंकने पडे, और खाना नाम मात्र रहे । तथा अति छोटी अवस्था में अनन्तकाय खाने का भी दोष लगता संभव है । अतः त्याज्य है । चूंकि असंख्य संमूर्छिम, पंचेन्द्रिय आदि की जीवोत्पत्ति हो, और हिंसा भी हो अतः त्याज्य है ।

२१ **चलित रस अभक्ष्य**- जिसके रस=स्वाद में परिवर्तन हो जाय, अर्थात् फल-फूलादि बिगड जाय, वह चलित रस में गिना जाता है । जैसे सडे हुए केले, चीकु, सेब, मुसंबी आदि बिगडने - सडने पर उसके वर्ण-गंध-रस-स्वादादि खराब हो

जाते हैं, उनमें असंख्य त्रस दोइन्द्रिय लारीया जीवों की उत्पत्ति होती है । बैक्टीरिया उत्पन्न होते है । उसी तरह आज की रोटी, चावल, दाल, सब्जी, चटनी, पुरी, फरसान जो नरम है उन्हें बचने पर रखकर कल खाने को वासी कहा जाता है । फ्रिज में रखने पर भी उनके रस-वर्ण-गंधादि बदल जाते है। और असंख्य जीवों की उत्पत्ति होती है ।

डबल रोटी आदि में असंख्य सूक्ष्म जीवों की उत्पत्ति होती है । तथा उस-उस वर्ण की फंगस होने से वह अनन्तकाय है और खाने से अनन्त जीवों की हिंसा का पाप लगेगा । अतः चलित रस वाले तथा वासी पदार्थ नहीं खाना चाहिए । रोटी को शेककर कडक खाखरे के रूप में बना दें फिर दुसरे दिन खा सकते है ।

२२ अनन्तकाय (कंदमूलादि) अभक्ष्य-- वनस्पति दो प्रकार की है (१) साधारण वनस्पतिकाय, और (२) प्रत्येक वनस्पतिकाय । जिसके एक शरीर में एक ही जीव हो वह प्रत्येक वनस्पतीकाय है । जैसे चीकु के ४ बीज है, सेब, संतरे, मुसंबी आदि फलों के एक-एक बीज में एक जीव है । उसी

तरह हरी तरकारियों में भिंडि, आलु, दुधी, करेला, तूरई, मिर्चि आदि में भी एक-एक बीज में एक जीव है । जो गिने जा सकते है । इनमें एक बीज में एक जीव है । अतः हिंसा बहुत कम मर्यादित है । जबकि एक शरीर में अनन्त जीव हो उसे अनन्तकाय या साधारण वनस्पतिकाय कहते है । अनन्त= जीवों की संख्या और काय=अर्थात् एक शरीर। ऐसे एक शरीर में रहे हुए अनन्त जीव वाली वनस्पति अनन्तकाय या साधारण वनस्पतिकाय कहलाती है । जिसके खाने से अनन्त जीवों की हिंसा होती है । इनकी पहचान के लिए कहा है, (१) इनमें बीज नहीं होते, (२) काटने पर भी पुनः उगते है, (३) नसें तथा शिराएं दिखाई ही न दें, गुप्त हो, (४) सन्धि-पर्वादि भी गुप्त हो, न दिखाई दे, (५) समभंग हो, (६) तांतणे-रेशे न हो ऐसे पदार्थ अनन्तकाय कहलाते है । इनके खाने से अनन्त जीवों की हिंसा का महापाप लगेगा । वनस्पति में जीव है और साधारण वनस्पति में अनन्त जीव है, अतः अनन्त जीवों की हिंसा करने की अपेक्षा तो बीजादि वाली प्रत्येक वनस्पतिकाय के सेवन में कम, गिनति की मर्यादित हिंसा ही होगी । अतः

वे ही क्यों न खाए जाएं? क्यों अनन्तकाय के खाने का आग्रह रखा जाय? यह अनन्त जीवों की हिंसा कारक होने से वर्ज्य अभक्ष्य है । सीधि सी बात है ।

३२ अनन्तकाय पदार्थ---

अनन्त ज्ञानी सर्वज्ञ केवली भगवान ने ऐसे अनन्त काय पदार्थों का स्वरूप बताया है । वे अभक्ष्य है । वर्ज्य है । उदाहरणार्थ ३२ नाम नीचे दिए जाते हैं ---

भूमि कंद-- जमीन कंद, या जमी, या भूमि कंद कहते है । कंद अर्थात् जमीन के नीचे होने वाले, जमीन में रहा हुआ भाग । आर्द अर्थात् न सूखा हुआ ऐसा कंद । ये सर्व जाति के किसी भी प्रकार के कंद अनन्तकाय होने से वर्ज्य है। (१) **वज्र कंद** - कंद विशेष की जाती है । (२) **सूरण कंद** - सूरण जाति का कंद । (३) **हल्दी** - न सूखी हुई आर्द् हल्दी, (४) **आदु-अदरक** - न सूखी हुई आर्द् नरम ऐसी अदरक भी अनन्तकाय है । (हल्दी और अदरक स्वयं अपने आप धूप में सूखने के बाद उनका हल्दी चूर्ण तथा सूंठ के रूप में उपयोग

कर सकते हैं ।) तन्तु-विशेष-तांतणे-रेशे होने से सूखने के बाद कल्प्य है । परन्तु यह नियम सभी के लिए नहीं है । (५) **आर्द्र कचूरा-** स्वाद में तीखा ऐसा हरा कचूरा । (६) **हरी शतावरी,** (७) **वीराली** -- लता है । कोई 'सोफाली' भी कहते है । (८) **कुमारी** - कुंआर पाठा (६) **थोर**-- हाथीया (पंजा वाले) कांटे वाले सभी प्रकार के थोर । जिससे खेत की वाड बनाई जाती है । (१०) **गलो-** गडूची-जो लता है । नीम के वृक्ष पर भू चढती है । (११) **लसुन,** (१२) **वंशकरेले,** (१३) **गाजर,** (१४) **मूला-** देशी और विदेशी अर्थात् सफेद और लाल दोनों अनन्तकाय है । मूला के पांचों अंग-कंद, डांडली, फूल, पत्र, तथा मोगरा, मोगरी दाना आदि सभी अभक्ष्य है, त्याज्य है, (१५) **लवणक-** लूणी नामक वनस्पति (१६) **लोढक-** पद्मिनि नामक वनस्पति का कंद (१७) **गिरिकर्मिका-** एक जात की लता है जिसे गरमर भी कहते है। (१८) **किसलय** - सभी प्रकार के नए उगे हुए कोमल पत्ते जिसमें नस शिराएं नहीं निकली है । (१६) **खरसंया-** कंद विशेष है । जिसे कसेरा, खीरिशुक भी कहते है । जिसकी

हरी-हरी डंडीया होती और जिसका दूध-विषलक्षण वाला है, (२०) **थेग की भाजी**, (२१) **हरी मोथ** - सरोवरों के किनारे होती है । और पकने पर काली पडती है । (२२) **लवण**-नामक वृक्ष की छाल, शायद उसे भ्रमर वृक्ष भी कहते है । (२३) **खिल्लहड** - खिलोडी या खिल्लड मानक कंद है । (२४) **अमृतवेल** - एक प्रकार की जल्दी बढने वाली वेल - लता विशेष है । (२५) **भूमिफोडा** - बारीश में छत्री के आकार के उगते है । जिसे गुजराती में 'बिलाडी ना टोप' भी कहते है। (२६) **विरुढ (अंकुर)**- चने-मूंग-उडीद आदि जब ठंढे पानी में घंटों भिगोकर रखे जाते है तो उनमें से सफेद अंकुरे निकलते है वे अनन्तकाय है । (अतः ठंडे पानी में भिगोकर रखे हुए अंकुरे फूटे हुए कठोल न खाएं) (२७) **ढक्क वत्थुला** का भाजी, (२८) **शूकरवल्ली** - जंगल में उगती एक जात की वेल-लता विसेष है । (२९) **पालक की भाजी** - जिसे पल्लंक-पल्लंक भी कहते है यह पालक की भाजी अनन्तकाय है । (३०) **कोमल ईमली** - जिसमें बीज न बने हो ऐसी कोमल ईमली। (३१) आलु - बटाटे, (३२) पिंडालु - (डुंगली) कांदा या प्याज कहते है ।

उपरोक्त ३२ प्रकार के अनन्तकाय की जातियां जो साधारण वनस्पतिकाय के नाम से प्रसिद्ध है । जिसके कण कण में अनन्त जीव है । अतः इन ३२ का सर्वथा त्याग करने से अनन्त काय का त्याग करना ही हितावह है । (इन नामों के समानान्तर देश-देश एवं अपनी भाषा में प्रसिद्ध नामों से इन्हे समझें)

भोग संबंधी ५ अतिचारों का त्याग करें ---

सच्चित्ते पडिबद्धे, अप्पोलि दुप्पोलि अ आहारे ।

तुच्छोसहि भक्खणया, पडिक्कमे देवसिअं सव्वं ।।

१ **सचित्त आहार** --- सचित्त=सजीव-जीवयुक्त वस्तु खानी यह अतिचार है ।

२ **सचित्त प्रतिबद्ध आहार** --- अचित्त बनाने पर भी दो घडी के अंदर खा ले या सचित्त बीजादि मिश्रित वस्तु खाए तो दोष है ।

३ **अपक्व आहार** --- जो बराबर पूरा पका नही है । कच्चा है ।

४ **दुष्पक्व आहार** --- अर्धपक्व, अधुरे भूजे हुए, न पके हुए कच्चे फलादि ।

तुच्छौषधि भक्षण --- जिसमें खाना कम और झूठा ही फेंकना ज्यादा हो ऐसी तुच्छ वस्तुएं, खाने से यह अतिचार लगता है । बेर, जाँबु आदि ।

सचित्त के त्यागी को उपरोक्त ५ अतिचार (दोष) लगते है । और सचित्त के परिमाणवाले को नियम के अतिरिक्त खाने से दोष लगता है । ये भोग संबंधी ५ अतिचार हुए ।

१४ नियम धारणा की समज

सचित्त-दव्व विगइ, वाणह तंबोल वत्थ कुसुमेसु ।

वाहण-सयण-विलेवण-बंभ दिसि न्हाण भत्तेसु ।।

इस श्लोक में १४ वस्तुएं गिनाई है । इन १४ वस्तुओं की धारणा प्रतिदिन करनी चाहिए । यह धारणा संख्या में, वजन में, तथा लंबाई आदि के रूप में करते है । जो वस्तु सर्वथा नहीं वापरनी हो उसका त्याग करें, और जो वापरनी है उसका प्रमाण धारें । और पिर रोज का पच्चक्खाण करें ।

१ **सचित्त** --- सजीव फल-फुल-तरकारियां आदि सचित्तों का प्रमाण (संख्या में तथा वजन में) धारण करना चाहिए। आज सिर्फ ये ही २,४,५ सचित्त वस्तु इतने - प्रमाण में वापरनी अन्य का त्याग ।

२ **दव्व - द्रव्य** - दिन में जितनी वस्तु मुंह में डालते है, खाते है उन द्रव्यों की संख्या धारना । पानी-दूध आदि द्रव्य............ आज में इतनी संख्या (४,५,७) में ही वापरुंगा । ज्यादा नहीं ।

३ **विगई** --- मध-मांस-मदिरा और मक्खन इन ४ महा विगईयों का तो आजीवन त्याग ही करना है । परन्तु घी-दूध-दही तेल, मिठाई, तथा तली हुई इन ६ सामान्य विगईयों में से आज मुझे कितनी (२-३) खानी है और (३-४) कितनी त्याग करनी है वह धारना । इन ६ विगईओं में से प्रतिदिन क्रमशः २-४ त्याग रखें ।

४ वाणह - (उपानह) - बूट-चप्पल, स्लीपर-सैंडल-मोजे आदि की मर्यादा निश्चित करनी । कि आज १ ही पहनुंगा। दुसरा नहीं ।

५ **तंबोल** - पान-सुपारी, इलायची, तज-लविंग, धाने की दाल तथा सोंफ आदि दिन में १ बार ही, या २ बार ही खाउंगा, या बिल्कुल ही नहीं खाउंगा । इस तरह संख्या में प्रमाण करें ।

६ **वस्त्र** - दिन में रात्रि में पहनने ओढने आदि के कपडों की जोडी की संख्या की मर्यादा बांधना - कि मैं आज (दिन में तथा रात में इन १(२-या ४) कपडों से अधिक नहीं पहनुंगा ।

७ **कुसुम** - फुल सुंघने या वापरने हेतु पुष्पादि तथा आदि से सौंदर्य प्रसाधन के स्नो-क्रीम-पाउडर कंकु आदि लेना । इसका उपयोग करना या न करना या, १-२ बार करना यह धारें । वह भी प्रमाण में ।

८ **वाहन** - मुसाफरी में यहां से वहां जाने आने में गाडी-मोटर आदि का उपयोग करना, यान करना, या १-२ बार ही करना यह धारना । फिरते यान, गाडी, मोटर-बस, रेलवे, प्लेन (विमान) आदि । चलते-में घोडा, उंट, हाथी, नोका आदि । तथा तैरते वाहन में स्टीमर-लौंच, बोट, नौका आदि की मर्यादा रखनी ।

९ **शयन** - सोने के लिए खाट-पलंग, गाडी-बिस्तर आदि तथा बैठने आदि के लिए कूर्षी, टेबल, सोफा आदि फरनीचर की मर्यादा रखनी । सोने-बैठने के संबंधी वापरने योग्य वस्तुओं की संख्या धारना ।

१० **विलेपन** - शरीर पर लगाने के लिए तेल, चंदन, अत्तर, सेन्ट, स्प्रे, तथा पीठि आदि विलेपन योग्य पदार्थों की मर्यादा या त्याग करना ।

११ **ब्रह्मचर्य** - सर्वथा मैथुन सेवन न करना । दिन में न करना। आज पर्वतिथि है यह याद करके त्याग करना आदि ।

१२ **दिशि-दिशा** - दशो दिशाओं में या अमुक दिशाओं में जाने का त्याग और अमुक दिशाओं में आज-४.......५ माइल जाना पडेगा ऐसी मर्यादा निश्चित करना ।

१३ **स्नान** - दिनगत-रात्रिगत-स्नान करूंगा तो १-या २ बार, या नहीं करूंगा, यह संख्या निश्चित करनी ।

१४ **भत्त-भोजन** - आज दिन में १ बार, या २ बार ही इतने.......(प्रमाण........) में भोजन लुंगा । अधिक सबका

आज के दिन त्याग । उपरोक्त १४ नियमों की धारणा प्रतिदिन करनी चाहिए साथ में षट्काय - ६ काय के नियम भी धारते है ।---

१ **पृथ्वीकाय** - कच्ची मिट्टि, निमक, चूना, सूरमा, क्षार, पत्थर, आदि आज इतना.....इस्तेमाल करना, या वजन में ..... इतना वापरना । अन्य सबका आज के दिन त्याग ।

२ **अप्काय** - पानी-पीने-नहाने-वापरने आदि कार्य में आज के दिन सिर्फ २, या १०, या २० या अमुक लिटर ही पानी वापरूंगा । अन्य सबका त्याग ।

३ **तेउकाय** - अग्निकायिक जीवों की विराधना मैं आज के दिन, २-४ लाइटें, जलते कोसले, गेस, दीपक इतने ही वापरूंगा .... अन्य सभी का त्याग ।

४ **वायुकाय** - वायुकायिक-जीवों की विराधना कम हो इसलिए आज पंखा, एयर कंडीशनर, झूसा आदि का मैं १-२-या-४ बार ही उपयोग करूंगा, अन्यथा नहीं करूंगा।

५ **वनस्पतिकाय** - आज दिन में मेरे लिए ०। या ०।।

किलो ही सिर्फ, या ये ये......... दो चार नाम वाली ही आज वह भी इतनी ही (..........वजन में) वापरूंगा, अन्य सर्व का त्याग ।

६ **त्रसकाय** - २,३, और ४ इन्द्रियवाले जीव जन्तु तथा पंचेन्द्रिय छोटे-बडे किसी भी जीव को मैं जानबूझकर आज न मारने की प्रतिज्ञा करता हुं । जयणा - उपयोग रखूंगा।

इस तरह उपरोक्त १४ नियम+६(षट्) काय का प्रतिदिन-रात त्याग करना, प्रमाण की मर्यादा बांधना आदि की धारणा करनी चाहिए । जिससे श्रावक अच्छा उपयोगवंत, जयणा वाला आराधक बन सके । और कई अमापनिरर्थक जीव हिंसा आदि पापों से बच सके ।

त्याग करना हो वहां X निशानी करें, कितना वापरना? प्रमाण..........संख्या में या वजन में लिखें, और उस धारणा के बाद कितना वापरा है यह लिखें । और धारणा में कितने बचे उसका लाभ रहा । तथा जयणा के खाने में छूट लिखें इस तरह कोष्ठक के आधार पर ५-१० बार करने से आदत बन जाएगी । शिख जाएंगे । फिर रोज धारते जाएं ।

१४ नियम तथा षट्काय धारण करने के लिए कोष्ठक

नाम	त्याग	कितना वापरना	कितना वापरा है	लाभ	जयणा
१ सचित्त					
२ द्रव्य					
३ विगई					
४ वाणह					
५ तंबोल					
६ वस्त्र					
७ कुसुम					
८ वाहन					
९ शयन					
१० विलेपन					

११ ब्रह्मचर्य					
१२ दिशा					
१३ स्नान					
१४ भोजन					
पृथ्वीकाय					
अप् काय					
तेउ काय					
वायु काय					
वनस्पति					
त्रसकाय					

१५ कर्मादान

इंगाली--वणसाडी--भाडी--फोडीसुवज्जए कम्मं ।

वाणिज्जं चेव य दंतं, लक्खरस केस विस विसयं।।

एवं खु जंत पीलण-कम्मं निल्लंछणं च दवदाणं ।

सर दह तलाय सोसं, असई पोसं च वज्जिज्जा ।।

१ इंगाल कर्म (अंगार कर्म्म)-- जो व्यापार विशेषरूप से अग्नि के आधार पर होते है, जैसे-कोयले बनाना, भट्ठी जलानी, ईंट के निभाडे जलाना, लुहारी तथा सोनी का व्यापार न करें।

२ वन कर्म - जंगल काटने का ठेका लेना, वृक्ष काटना, कई संख्या में वृक्ष ऊखेडना, बुलडोझर चलाना, फल-फूल, पत्तियां, तने शाखा काष्ठ, बाग-बगीचे-वाडी आदि काटना तोडना नष्ट करना आदि वन कर्म का व्यापार नहीं करना ।

३ शकट कर्म - गाडा-गाडी, बैलगाडी, घोडा गाडी, ऊंट-गाडी आदि बनाना बनवाना बेचना आदि तथा गाडी-मोटर के कारखाने चलाना आदि व्यापार न करना ।

४ भाडी-भाटक कर्म - घोडागाडी, बैलगाडी, ऊंटगाडी, ट्रक, ट्रैक्टर आदि किराए पर भाडे देने का कार्य भी न करें।

५ स्फोटक कर्म - क्षेत्र, कूँए बनाना, बावडी, तालाब खुदवाना, नहर बनवाना, बांध बनाना, आदि में सुरंग फोडना, बडा विस्फोट करना खानें खुदवाना आदि व्यापार वर्ज्य है। जमीन खोदनी, हल चलाना, खोदना, तोडना आदि कर्म न करें। कर्मादान में ये ५ कर्म कर्मादान है।

५ वाणिज्य - १ दंत वाणिज्य - दांतो का व्यापारादि न करना, हाथी दांत, पशु के दांत, सिंग, जानवरों के नाखून पक्षियों के पंख, मोर पिंछ, गाय-बैल-भेंस के चमडे का तथा छिप, मोती, कस्तुरी, गोरोचन, अंबर आदि पशु जन्य वस्तुओं का व्यापार नहीं करना चाहिए।

२ लक्षा वाणिज्य - लाख, धावडी, नील, मनशील, हरताल, रोगान राल, आदि पदार्थ बनाने का व्यापार न करना।

३ रस वाणिज्य - मध मदिरा (शराब) मांस, मक्खन,

घी, दूध - दहीं, तेल, गुड आदि वस्तुएं बनाने०बेचने का व्यापार न करना । तथा घास तेल पेट्रोल, आदि का व्यापार न करना।

४ **विष वाणिज्य** - सोमल, अफीम, मोरथुथा, वच्छनाग आदि प्राणीज विष, खनिज विष तथा औषधीय विष, कृत्रिम बनाया हुआ विष, तथा विषैली औषधियां फ्लीट आदि किटाणु नाशक दवाईयां तथा गेस आदि बनाने-बेचने के व्यापार नहीं करना ।

५ **केश वाणिज्य** - पशु-पक्षियों के बाल, रेशे, रोम निकालना, ऊखाडना, चमरी गाय के बाल ऊखाडना, बालों के ब्रश आदि बनाना स्त्री-पुरुषों के बाल आदि इकट्ठे करना विग बनाना, बेचना, ऊन आदि का व्यापार न करना ।

ये पांच प्रकार के व्यापार श्रावक के लिए वर्ज्य है ।

५ **सामान्य कर्म** - १ यंत्र पीलन कर्म - यंत्र, संचे, घंटी, घाणी-मशीनों के द्वारा तेल, रस निकालना, ईख, तिल, एरंडी, अलसी आदि को पीलना तेल निकालने आदि में हिंसा का प्रमाण ज्यादा है, अतः यंत्र-मशीनें सतत चलाने का व्यापार न करें । मीलें न चलाएं ।

२ निर्लांछन कर्म - गाय के गले की पोली (चमडी) काटना, पशुओं के कान छेदना, या पशुओं को नपुंसक करना अंगोपांग छेदन-भेदन, आदि निर्लांछन कर्म का व्यापार न करना।

३ दव दाह - जंगल जलाना, पहाडों पर, खेतों में आग लगाने का कर्म दवदाह कहलाता है । ये सर्वथा वर्ज्य है ।

४ सर-द्रहतडाग-शोषण कर्म- सरोवर, तालाब, कूंए, बावडी, नहर आदि के पानी को सर्वथा सूकाना, निकालना, पानी का शोषण करण करना, आदि शोषण कर्म न करना । असंख्य पंचेन्द्रिय मछलीयां आदि मरे, हिंसा हो यह महापाप न करना ।

५ असती पोषण - क्रीडा आनन्द प्रमोद के लिए कुत्ते, बेल, सांढ, बिल्ले, बाघ, मेना, मूर्गे आदि लडाना, भिडाना, धन कमाने हेतु से दासी, नपुंसक, वेश्या आदि को पोषना, असती आदि का पोषण करना यह असती पोषण कर्म है ।

इस प्रकार से व्रती श्रावक को ५ कर्मादान, ५ वाणिज्य, और ५ सामान्य कर्म ये १५ कर्मादान सर्वथा त्याज्य-वर्ज्य है।

अनेक जीव हिंसा, आदि महापाप का व्यापारादि न करना, न कराना ।

इस व्रत में धारने योग्य नियम

१ सात व्यसनों का त्याग करना ।

२ पर्वतिथि के दिन हरी वनस्पति (लीलोतरी) का त्याग करना।

३ आद्रा नक्षत्र के बाद आम (केरी) का त्याग करना ।

४ कच्चे दूध-दही के साथ कठोल एवं कठोल के पदार्थ द्विदल रूप में न खाना । दही गरम करके भोजन के साथ लेना।

५ आज का भोजन कल के लिए रखकर वासी न खाना ।

६ मध मक्खन वासी न खाना ।

७ किसी भी प्रकार की मदिरा शराब-दारु देशी या विदेशी का सर्वथा त्याग करें ।

८ मांस एवं मांस से निर्मित मांसाहार सर्वथा त्याग करें ।

६ मांसाहारी होटल में न जावें ।

१० मांसाहारी मित्र न रखें ।

११ अंडे एवं अंडे से निर्मित सभी पदार्थों का त्याग करें ।

१२ प्राणीजन्य पदार्थों का त्याग करें ।

१३ प्राणी हिंसा से निर्मित सौंदर्य प्रसाधन के साधनों का सर्वथा त्याग करना ।

१४ प्राणीज औषधीयों (दवाइयों) का त्याग करें ।

१५ अनन्तकाय-कन्दमूल का सर्वथा त्याग करना ।

१६ २२ अभक्ष्य का त्याग करना ।

१७ रात्रि भोजन का त्याग करना ।

१८ किसी प्रकार का विष (जहार) कभी भी न लेवें ।

१९ तुच्छ फल, अन्जाने फल आदि का सेवन न करना ।

२० ब्रेड-(पांव या डबल रोटी) बटर का त्याग करना ।

२१ पर्वतिथि को यथाशक्ति छोटा-बडा तप करना ।

२२ १५ प्रकार के कर्मादान का त्याग करना ।

२३ प्रतिदिन-रात १४ नियम की धारणा करना ।

२४ पोंख-पापडी-न खाना ।

२५ प्रतिदिन कम से कम सुबह नवकारशी तथा शाम को चोविहार या तिविहार पच्चक्खाण अवश्य करना ।

२६ अषाढ चातुर्मास में पाला, धनिया-कोथमीर-सूका मेवा (बादाम के सिवाय) का त्याग करें ।

२७ घी-तेल गुड आदि के बर्तन खुल्ले न रखना ।

२८ अषाढ चातुर्मास में या हमेशा उबाला हुआ गरम पानी पीना ।

२९ वृक्ष के फल-फूल-पत्ते-शाखा आदि न तोडना ।

३० सेन्ट-अत्तर क्रीम-स्नो-पाउडर-स्प्रे आदि प्राणीज मिश्रित पदार्थ आदि न वापरना ।

३१ वापरने के वस्त्रादि की मर्यादा रखना ।

३२ पर्वतिथि आदि को ब्रह्मचर्य पालना । स्व स्त्री में मर्यादा रखनी ।

३३ भोजन में वापरने की वस्तु की मर्यादा रखें ।परिमित संख्या एवं प्रमाण में वापरना ।

इस व्रत के ५ अतिचार

सच्चित्ते पडिबद्धे, अप्पोलि-दुप्पोलिअं च आहारे ।

तुच्छोसहि भक्खणया, पडिक्कमे देवसिअं सव्वं ।।

१ सचित्त (सजीव) वस्तु खानी - २ सचित्त के साथ मिश्रित या लगी हुई सचित्त प्रतिबद्ध आहार लेना, ३ अपक्व (अर्द्ध कच्चे) आहार खाना, ४ खराब तरीके से पकाई हुई (मिश्रित) वस्तु खानी ५ कम खाया जाय और ज्यादा फेंका जाय ऐसे तुच्छ बेर ईख दाडिम आदि तुच्छौषधि का त्याग करना ।

जयणा - १४ नियम धारने में सचित्त द्रव्यादि की संख्या प्रमाण आदि धारने में यदि विस्मृति आदि अनुपयोग दशा में कोई भूल हो जाय तो उसमें जयणा । जिस नियम में जो जयणा जितनी रखनी हो वह पहले से रखकर ही पच्चक्खाण लेवें । अन्जान में सचित्तादि जीभ पर रख कर चाख लिया उसकी जयणा । पर्व तिथि का ख्याल न रहा और नियम भूल गए तो दुसरे दिन कर लेना । अन्जान में भूल से वर्ज्य पदार्थ खाने में आया और जीभ पर आते ही ख्याल आ जाने से थूंक

देना । आगे सब नही खाना । और गुरु महाराज से प्रायश्चित ले लेना । इत्यादि जयणा रखते हुए आराधक भाव जरुर बनाए रखना चाहिए ।

ध्येय- अनन्त संसार की अनन्त भव परंपरा अनन्त जन्मों में जीव अनन्त पदार्थों का भोग और उपभोग कर लिया है । अब कोई पदार्थ जीव के लिए भोगना शेष नहीं बचा है । अब जो भी पदार्थ भोग रहे है वह झूठ खाने, या वमन करने के बाद पुनः खाने के जैसी बात है । और भोग उपभोग यह तो अनन्त तृष्णा की भयंकर आग है । इसमें जितना ही घी डालो सब स्वाह होता जाएगा । तृष्णा की तृप्ति बडी कठिन है । 'भोगाः न भुंक्ता वयमेव भुंक्ता' भोग नहीं भोगे गए हमारा ही भोग लग गया । हम ही भोगे गए अतः भोग का त्याग ही श्रेष्ठ है । एक दो सामान्य पदार्थ या भोग आत्मा की गति न बिगाड दे महापाप कराके नरक में न फेंक दें अतः भोगोपभोग परिमाण व्रत इस ध्येय से आवश्यक है ।

व्रतधारी के लिखने के लिए

(व्रत लेने वाले यहां अपनी विशेष बात लिखें)

८ वां - अनर्थदंड विरमण व्रत

(तीसरा गुणव्रत)

शरीराद्यर्थ दण्डस्य, प्रतिपक्ष तया स्थितः ।

योऽनर्थ दण्डस्तत्त्यागस्तृतीयं तु गुणव्रतम् ।।

--शरीरादि के हेतु से जो प्रवृत्ति की उसके दण्ड के रूप में प्रतिपक्षी स्थित है । वह जो अनर्थ अर्थात् निरर्थक दण्ड है उसका त्याग करने रूप यह तीसरा गुणव्रत अनर्थदंड विरमण व्रत है । शरीरादि में आदि पद से यहां शरीर क्षेत्र (जगह-जमीन) घर, दुकान, तथा धन-धान्य, कुटुम्ब-परिवार, नोकर-चाकर, पशु-पक्षी आदि जीवन निर्वाहोपयोगी साधनों का बिना कारण के निष्प्रयोजन जो पाप किया जाता है वह अनर्थकारी निरर्थक पाप है । उसके दंड के रूप में होने से अनर्थदंड कहा जाता है । और ऐसी अनर्थकारी निरर्थक पाप की प्रवृत्ति का त्याग करने रूप जो पच्चक्खाण लिया जाय वह अनर्थदंड विरमण व्रत कहलाता है । अर्थात् निष्प्रयोजन निरर्थक पापों का त्याग ! अर्थ का मतलब है प्रयोजन । सकारण । ऐसे अर्थ में लगा पाप अर्थदंड कहलाएगा । यह अर्थ ४ प्रकार

से है -- (१) स्वजन (२) शरीर (३) धर्म और (४) व्यवहारादिक का आश्रव ये ४ अर्थ दण्ड है । मनुष्य जिस कारण से, जिस हेतु से जो ज्यादा प्रवृत्ति करता है वे अपने सगे-संबंधि अपने शरीर की प्रवृत्ति, धर्म और लोक व्यवहार की प्रवृत्ति का मनुष्य के जीवन में ज्यादा उपयोग है । यह प्रवृत्ति सप्रयोजन सहेतुक सार्थक है । लेकिन इससे विपरीत प्रवृत्ति निरर्थक निष्प्रयोजन है । उसे अनर्थकारी, अनर्थदंड की प्रवृत्ति कहते है । यह पाप प्रवृत्ति हुई । अतः ज्ञानीओं ने इसका त्याग करने के लिए व्रत क्रम में आठवां और गुणव्रतों में तीसरा अनर्थदण्ड विरमण व्रत नामक व्रत बताया है ।

अनर्थदण्ड के मूल ४ प्रकार और उपभेद ११

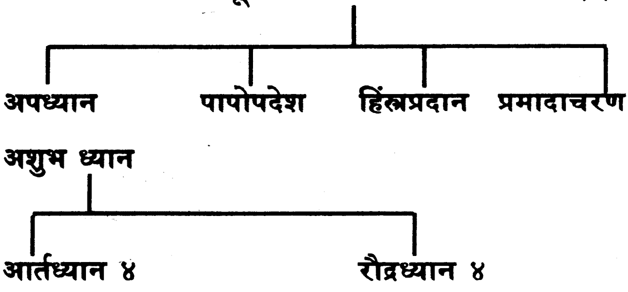

आर्त का अर्थ है दुःख-पीडा, और ध्यान का अर्थ यहां पर विचार है । दुःख पीडा से छूटने का सतत विचार करना अर्थात् सीधे शब्दों में चिंता करना यह आर्तध्यान कहलाता है। इसके ४ भेद है । १ **अनिष्ट वियोग**-- मुझे जो नही चाहिए, जो मुझे अप्रिय है ऐसे मिले हुए पदार्थ छूट जाएं, और भावि में न मिले ऐसी चिंता यह अनिष्ट वियोग है । साथ ही इष्ट का वियोग भी न हो जाय यह चिंता है । २ **इष्ट संयोग**-- मुझे जो प्रिय-पसंद है ऐसे पदार्थ या भोगों का संबंध सतत बना ही रहे हमेंशा मिलता ही रहे। जो है वह न छूटे ऐसी सतत इच्छा यह भी चिंता-आर्तध्यान है । ३ **रोगादि वियोग**-- रोग टलने की सतत चिंता में हाय......... हाय करना यह. ४ **निदानाध्यवसाय (नियाण)**-- दैवी भोग सामग्री. चक्रवर्ती की ऋद्धि-सिद्धि आदि तथा पति राग या द्वेष में किसी की प्राप्ति की प्रबल इच्छा से नियाणा बांधना यह भी आर्तध्यान है ।

रौद्रध्यान-- १ **हिंसानुबंधी**- जिसके उपर द्वेष हो या अपनी वस्तु ली हो इत्यादि कारणवश किसी को मारने की क्रूर हिंसक वृत्ति की विचारधारा । २ **मृषानुबंधी** - किसी पर कलंक लगाना । आरोप लगाना चुगली करना । गाली देना आदि

हिंसा हो ऐसी उत्तेजक भाषा में झूठ बोलना आदि । ३ **स्तेयानुबंधी** - चोरी करने की इच्छा रखनी । चोरी में किसी को मारना पडे तो मारने की इच्छा रखनी यह । ४ **विषय संरक्षणानुबंधी (परिग्रहानुबंधी)**-- धन के रक्षण के लिए किसी पर विश्वास न आने से पर के प्रति वे मर जाय तो अच्छा ऐसी दुष्ट खराब विचारधारा यह । अशुभ या अपध्यान के आर्तरौद्रध्यान के ये ८ भेद है । निरर्थक अनर्थकारी विचारों से जो पापकर्म का बंध होता है वह अनर्थ दंड है ।

९ पापोपदेश-- बैल-घोडे की खसी करो, जमीन खोदो, शत्रुओं को मारो, युद्ध करो, मशीनें चलाओं, शस्त्रादि बनाओ, नकली रूपए छापो, इत्यादि कार्यों में बिना प्रयोजन के भी किसी को प्रेरणा करो, सलाह दे आदि पापोपदेश है ।

१० **हिंस्रप्रदान**-- हिंसा के कारणभूत या इसमे अंग भूत, ऐसे शस्त्र, अग्नि, घंटी, मशीन, मंत्र, मूल जडी बूटी दवाई, इत्यादि पापारंभ हिंसा कारक वस्तु रखना, लेना, देना, आदि हिंस्रप्रदान, ११ प्रमादाचरण-- स्नान, मर्दन, तैल मालीश

शोभा शुश्रुषा, विलेपन करना, देह शोभा, वैषयिक भोगों में मस्त रहे इत्यादि प्रमादाचरण का ही सेवन करते रहना, और आत्म कल्याणार्थ कुछ भी न करते हुए पर प्रपंच में निंदा कुथली में ही बैठे रहना खेल कूद में ही मस्त रहना, या समय पसार के लिए पत्ते खेलना आदि करना यह भी प्रमादाचरण है । ४ विकथा का त्याग करना -- १ स्त्री कथा २भक्त-भोजन की चर्चा, ३ देश कथा ४ राज कथा- में राज कारण की चर्चा इत्यादि ये चारों निरर्थक पाप कर्म बंधाने वाले होने से अनर्थकारी है । पशु-पक्षी लडाना, नाटक-सिनेमा-सर्कस आदि में भटकना यह सब अनर्थदंड है । इनसे बचना यह अनर्थदंड विरमण नामक ८ वां और तीसरा गुणव्रत है ।

इस व्रत योग्य छोटे-छोटे नियम

१ जुगार, शिकार, मांसाहार का सेवन, मदिरा (शराब) पीना परस्त्रीगमन, वेश्यागमन, चोरी करना आदि सात व्यसनों का त्याग करना ।

२ मटका, सट्टा, आंकडा, फिचर, जुगार, या पैसे से पत्ते खेलना आदि का त्याग करना ।

३ लोटरी लेना, खरीदना, जुआ आदि का त्याग करना ।

४ ४ विकथा न करने के पच्चक्खाण करना ।

५ नाटक, सिनेमा, सर्कस, टी.वी. पर पिक्चर, वीडीयो फिल्म आदि न देखना । देश-विदेशों में धुमने-फिरने देखने न जाना ।

६ कुंभ स्नान, गंगा स्नान, नदी, सरोवर तथा समुद्र स्नान न करना ।

७ कुत्ते, सांढ, बैल, पाडे, हाथी, आदि न लडाना, और तमाशा देखना नहीं ।

८ सिंहादि के लिए भक्ष्य प्राणी को भेजकर उसके खाने-मारने के तमाशे को न देखना न करना ।

९ किसी अपराधी को पोलीस मारती हो, किसी को फांसी दी जाती हो तो देखना नहीं ।

१० राजकारण की निरर्थक चर्चाओं में भाग न लेना ।

११ भोजनादि में खाने-पीने में शर्त न लगाना ।

१२ देव-गुरु-धर्म के सोगन न खाना । गाली-गलौच न करना।

१३ पक्षी पालना-या कुत्ते आदि पालने का शोक न रखना ।

१४ बंदुक पिस्तोल तलवार आदि शस्त्र बनाना नहीं । रखना नही चलाना नही ।

१५ हल कोदाली कुहाडी दातरी तथा तलवार भाला धनुष्यादि भी बनाना-रखना-चलाना नहीं ।

१६ कामोत्तेजक कामवर्धक बातें न करनी, वैसे प्रयोग न करना।

१७ अश्लील, बिभत्स गंदा साहित्य न पढना ।

१८ राजकारण में, खेल कूद या चुनावादि में शर्त न लगाना।

१९ पत्ते, चेस, शतरंज आदि पैसे से या सादे भी न खेलना ।

२० सत्य-तथ्य न हो ऐसी व्यर्थ निंदा-कुथली न करना ।

२१ जिन मंदिर की ८४ आशातना से बचना ।

२२ नारदीवृत्ति से झूठी सलाह देकर या चढाकर किसी को लडाना नहीं ।

२३ घोडे या जानवर मनुष्यों की रेस की योजना न करना, खेल न करना या पैसा लगाना नहीं, सिनेमा के गीतों में,

संगीत में व्यर्थ समय न बिगाडना ।

२४ हंशी-मजाक, विनोद-गप्पे, कव्वाली, या गजलों में रस न लेना ।

२५ मल्लयुद्ध, लडाई, कुश्ती, बोक्सींग, फाइटिंग, फ्री स्टाइल कराटे न करना, न देखना ।

आठवें व्रत के ५ अतिचार

कंदप्पे कुक्कुइए, मोहरि अहिगरण भोग अइरित्ते ।

दंडमि अणट्ठाए, तइअंमि गुणव्वए निंदे ।।

१ कंदर्प=काम (विषय-भोग-स्व-या पर के लिए कामोत्तेजक भाषा, संकेतादि अतिचार रूप है ।

२ कोकुच्यातिचार - अंगोपंग की विकार प्रेरक चेष्टाएं करनी स्व-पर के विकार जागृत हो, वासना भडके ऐसे प्रयोग-चेष्टाएं ।

३ मुखरता- गाली-गलोच की गंदी भाषा बोलना, पापोपदेश करना, अतिवाचालता रखनी यह सब अतिचार है ।

४ संयुक्ताधिकरण- बंदुक में गोली डालनी, कुहाडी में हाथ

डालना, आदि शस्त्रादि अधिकरण, का त्याग करना चाहिए। अपने को चाहिए उससे ज्यादा अधिकरण न रखना चाहिए ।

५ **भोगातिरिक्त अतिचार**--- जरूरियात से ज्यादा-भोग-उपभोग योग्य वस्तुओं का संग्रह, तथा उपयोग यह अतिचार है ।

उपरोक्त पांचो अतिचार-दोषों को जानकर उससे बचना चाहिए ।

जयणा--- जल्दी बाजी में उपयोग न रहने से, नियम याद न आने से कोई भूल हो जाय, कोई दोष लग जाय तो जयणा । नाटक सिनेमा आदि सहेतुक नहीं देखना परन्तु भूल में जयणा या अनिच्छा से दुःख पूर्वक पति के साथ जाना पडा तो जयणा इत्यादि सामान्य रूप से भूल में जयणा ।

ध्येय--- आत्मा को धर्म सन्मुख लानी है । अध्यात्म योग पर अग्रसर होना है । निरर्थक पाप कर्मों से बचना है, जीवन विरक्त-वैरागी बनाना है । आत्मा को पापभीरू बनानी है । और अनेक पापों से बचने का, नए पाप कर्म न लगे ऐसे हेतु से बचने के शुभ हेतु से, आत्म कल्याण के ध्येय से इस व्रत का पालन करना यह उचित है ।

व्रतधारी के लिखने के लिए

(व्रत लेने वाले यहां अपनी विशेष बात लिखें)

प्रथम शिक्षाव्रत - ९ वां-सामायिक व्रत

सावद्य कर्म मपत्तस्य, दुर्ध्यान रहितस्य च ।

समभावो मुहूर्तं तद्, व्रतं सामायिकाव्हयम् ।।

देश विरती धर्म में श्रावक जीवन योग्य १२ व्रतों में ५ अणुव्रत, ३ गुणव्रत के बाद ४ शिक्षाव्रतों की संयोजना है। शिक्षाव्रत का विभाग यहां से शुरू होता है । ४ शिक्ष।व्रतों में प्रथम (बारह व्रतों में नौवा) सामायिक व्रत है । छजीव-निकाय की विराधना आदि रूप सावद्य पाप प्रवृत्ति-अविरति से बचकर, पच्चक्खाण करके निरवद्य-निष्पाप-विरति की प्रवृत्ति में आना, तथा दुर्ध्यान-आर्त-रौद्रध्यान आदि छोडकर समभाव की समता में आना यह सामायिक व्रत है । करेमि भंते के पाठ पूर्वक सामायिक व्रत है ।

सामायिक व्रत का नियम-- (१) प्रतिदिन नियमित अखंड रूप से सुबह, शाम,रात में या दिन भर में रोज की १, २, ३, ४, या ५, या १० सामायिक करनी । २ या एक सप्ताह में कुल मिलाकर १५, २०, या २५ सामायिक करनी।

३ या १ महिने में कुल मिलाकर १००, १२५ सामायिक करनी । ४ या एक वर्ष में कुल मिलाकर ५०० या १००० सामायिक करनी । इत्यादि रूप से जिस प्रकार से आप संख्या धारना चाहें उस प्रकार से धारणा कर सकते है । प्रतिदिन की संख्या धारना आसान है । जिससे भूल न हो । और लिख लें, या सप्ताह के माध्यम से भी धारें । जैसी आपकी इच्छा ।

सामायिक व्रत के ५ अतिचार---

तिविहे दुप्पणिहाणे अणवट्ठाणे तहा सइ विहूणे ।

सामाइअ वितहकए पढमे सिक्खावए निंदे ।।

१ **मनोदुष्प्रणिधान--** सामायिक में आर्त-रौद्र ध्यान करना, चिंता करनी, कुविकल्प विचारना, दुष्प्रणिधान पूर्वक करना।

२ **वचन दुष्प्रणिधान--** सामायिक में सावद्य हिंसा हो ऐसा प्रेरक वचन बोलना, कर्कश वचन बोलना, गाली गलोच करना, या अपशब्द बोलना, कलह करना आदि ।

३ **काय दुष्प्रणिधान--** सामायिक में निंद लेनी-सोना, लम्बे

पैर करके या भीत के सहारे से आराम से बैठना, घूमना, फिरना, चलना। आदि काया की हलन-चलन यह अतिचार है ।

४ अनवस्थान -- पूरी ४८ मिनिट न होने पर भी पारना, दो घडी पूरी न होने देना, किसी कदर पूरी करना, निर्धारित समय पर न करना, फिर कर लूंगा, बाद में कर लूंगा आदि प्रमाद सेवन इत्यादि अतिचार है ।

५ स्मृतिहीनता-- घर-दुकान आदि की कार्य व्यग्रता से भूल जाना कि मैने सामायिक की है? या नहीं की है? सामायिक लेने का समय भूल जाना, आदि उपरोक्त पांच अतिचारों को जानकर उन दोषों से बचना सामायिक में घर संसार की निरर्थक बातें न करना । इसी तरह १० मन के १० वचन के १२ काया के ऐसे ३२ दोषों से बचने का संकल्प रखना चाहिए । समय तथा नियम होते हुए भी सामायिक न करना, प्रमाद रखना, तथा सामायिक में ४ विकथा करनी, आदि अतिचार है । स्त्री आदि के संघट्टे से बचना। चरवला-मुहपत्ति-कटासना आदि उपकरण पूरे शुद्ध न रखना । इस तरह अतिचारों से बचते हुए शुद्ध सामायिक करना ।

जयणा-- अशक्ति रोगग्रस्तता तथा मुसाफरी आदि के कारण सामायिक न हो तो जयणा । आज करनी भूल जाय तो जयणा, परन्तु आगे-डबल करके नियम पूरा करना । आवश्यक कारण-निमित्तवश जयणा ।

ध्येय-- आत्मा समभाव-समता में रहे यह ध्येय रखें। राग-द्वेष कम हो इस ध्येय से करें । अशुभ कर्मों का आश्रव न हो, पुराने कर्मों की निर्जरा हो आत्मा संसार से विरक्त होकर स्वभावदशा में लीन हो, आत्मा साधु तुल्य बनें इस ध्येय से सामायिक करें ।

(व्रतधारी यहां अपनी विशेष बात लिखें)

१० वां- (२रा शिक्षाव्रत) देशावकाशिक व्रत

संक्षेपणं गृहीतस्य, परिमाणस्य दिग्व्रते ।

यत् स्वल्पकालं तद् ज्ञेयं, व्रतं देशावकाशिकम् ।।

देसावगासिअं पुण, दिसिपरिमाणस्य निच्च संखेवो ।

अहवा सव्ववयाणं, संखेवो पइदिणं जो उ ।।

दिग्व्रते परिमाणं यत्, तस्य संक्षेपणं पुनः ।

दिने रात्रौ च देशावकाशिक व्रतमुच्यते ।।

धर्म संग्रह के (१ला) श्लोक, संबोध प्रकरण के (२रे) तथा हेमचन्द्राचार्य कृत योगशास्त्र के (३रे) श्लोक में देशावकाशिक व्रत का स्वरूप बताया है वह इस प्रकार है । पहले जो छट्ठा दिग्परिमाण (दिशा के प्रमाण) का व्रत लिया है । उसमें आजीवन काल के लिए दशों दिशा में जाने को, या भिन्न-भिन्न देशों में, विदेशों में जाने की जो छूट रखी थी, वह देशों के नाम की हो या, १०००, ५०००, माइलों की संख्या में हो उनका इस दसवें व्रत से संक्षेप करने के लिए कहा है । यद्यपि

(अमरीका, जपान आदि) देशों में जाने की (रोगादि कारण, पुत्र-पुत्री को मिलने आदि) कारण प्रसंग पर १, २, विदेशों में जाने की जो छूट रखी थी उसका आज संक्षेप करना यह देशावकाशिक व्रत कहलाता है । क्योंकि आज जबकि वह कारण उपस्थित नहीं है तो फिर निरर्थक उस रखी हुइ छूट का दोष फिर क्यों लेना? आज तो जाना नहीं है अतः आज इस दशवें व्रत से संक्षेप कर लिया जाय । उसी तरह सातवें व्रत में भी भोग और उपभोग की सामाग्री के पच्चक्खाण में मैने जो जो बडी ज्यादा प्रमाण में छूट रखी है उन सब का आज प्रयोजन न होने से इस दशवें व्रत से संक्षेप कर लेना चाहिए । उसी तरह संबोध प्रकरण के श्लोक के उत्तरार्ध मे इस तरह कहा है कि "सव्ववयाणं संखेवो" अर्थात् पहले जिसने सभी ९ व्रत लिये है उनमें लम्बेकाल की जो बडी बडी छूटें (जयणा) रखी है । उन सभी का इस दसवें व्रत से संक्षेप करना यह देशावकाशिक व्रत है । अन्य सभी व्रत तो लम्बेकाल के लिए या आजीवन के लिए गए हैं । परन्तु यह दसवाँ देशावकाशिक व्रत तो प्रतिदिन, प्रतिरात्रि को धारने के लिए है । जैसे आप १४ नियम रोज धारते हैं । उसी तरह यह

देशावकशिक व्रत पिछले व्रतों में रखी बडी छूटों को याद करके संक्षेप करके आज दिन या रात में अब मुझे कितना रखना है? कितना चाहिए ? इत्यादि से संक्षिप्तिकरण करने रूप पच्चक्खाण किया जाता है। उदाहरणार्थ अमरीका जाने की छूट रखी होते हुए भी आज दिन में तो नहीं जाना है, रात में भी नहीं जाना है अतः देसावकाशिक का पच्चक्खाण लेकर उस छूट के दरवाजों को बंद कर दिया । इसलिए रोज नवकारशी या शाम को तिविहार, चोविहार का जो पच्चक्खाण करते हैं उसी तरह धारणा करके देसाव- के पच्चक्खाण भी कर लेना चाहिए । योगशास्त्र में हेमचन्द्राचार्यजी ने "दिनेरात्रौ" दिन में तथा रात्री में इस संक्षेप के पच्चक्खाण करने का कहा है । और गंठिसहींयं आदि के पच्चक्खाण की तरह यह १-२ प्रहरादि का भी लिया जा सकता है । प्रतिदिन अपनी जरूरियातें तथा गमनागमन की स्थिति०परिस्थिति का विचार करके यह व्रत लेना चाहिए।

देशावकाशिक व्रत का तीसरा विकल्प है कि-प्राचीन परम्परा से १ दिन में दस सामायिक करने के नियम से भी देशावकाशिक व्रत किया जाता है । आज दिन में मैं १०

सामायिक करूंगा ऐसा देशावकाशिक व्रत का पच्चक्खाण करके दिन में १० सामायिक करते हैं । इसमें एक विकल्प ८ सामायिक+और २ प्रतिक्रमण=१० । इस तरह १० सामायिक करते है, और दुसरा पक्ष सामायिक १० ही होनी चाहिए । दो प्रतिक्रमण अलग से करें । ऐसा भी मत है । सामायिक में धर्मग्रंथ का वांचन, स्वाध्याय जाप ध्यानादि करना । इस तरह से १ दिन में १० सामायिक वाले देशावकाशिक व्रत के पच्चक्खाण आप १ वर्ष में कितनी बार करेंगे उसकी संख्या निश्चित करके भी यह दसवां व्रत लिया जा सकता है । १ वर्ष में १५ बार, २० बार या ५० बार इस तरह से १० सामायिक पूर्वक यह देशावकाशिक व्रत करूंगा इस तरह संख्या निश्चित करके यह व्रत लेना चाहिए ।

दसवें व्रत में लगने वाले ५ अतिचार---

आणवणे पेसवणे, सद्दे रूवे अ पुग्गलक्खेवे ।

देसावगासिअंमि, बीए सिक्खावए निंदे ।।

१ **आनयन प्रयोग** - अपनी धारणा के उपरांत बाहर की भूमि से वस्तु मंगाना, किसी को भेज कर मंगाना यह दोष है ।

२ **प्रेष्य प्रयोग**-- अपनी धारी हुई सीमा के बाहर यहां से वस्तु या व्यक्ति को दूर भेजने से यह दूसरा दोष लगता है।

३ **शब्दानुपात**--- जोर से ध्वनि करनी, ऊंचे से खांसी खानी आदि शब्द संकेत से, धारी हुई सीमा के बाहर से वस्तु या व्यक्ति को बोलानी भेजनी आदि अतिचार है ।

४ **रूपानुपात**--- "मैं यहां हुँ, व्रत में हुँ," ऐसा कहकर या दूर वाले को अपना रूप-मुंह-हाथादि दिखाकर बोलना जिससे व्यक्ति या वस्तु आ जाय ऐसा करना, या ऊपर-नीचे-आदि जाकर दुसरों को देखना आदि अतिचार है ।

५ **पुद्गल प्रक्षेप**--- स्वयं घर में रहकर भी बाहर की व्यक्ति या नोकर को कंकड आदि फेंककर यह वस्तु लानी है, या नोकर को बुलाना या अपना काम करने के लिए याद दिलाना आदि इस अतिचार में गिना जाता है । उपरोक्त पांचो अतिचार इस दसवें व्रत में लगने की संभावना वाले है । अतः बताए है । ताकि इस अतिचारों से बचने की भावना रखें ।

इस व्रत में आप क्या करेंगे?

१ छट्ठे दिक् परिमाण व्रत में दिशाओं की तथा देशों की धारी हुई मर्यादा का संक्षिप्तीकरण आज के लिए करना । आज मुझे किस दिशा में कहां तक जाना है? आज कहीं नहीं जाना है अतः उन-उन सभी दिशाओं में न जाने तथा देशों में न जाने के पच्चक्खाण करना ।

२ अन्य सभी व्रतों में जो ज्यादा जयणा रखी है, उनकी आज आवश्यकता नहीं है, अतः आज के दिन उन सब जयणाओं का त्याग । सभी व्रतों की धारी हुई धारणाओं में आज के दिन और ज्यादा संक्षिप्तीकरण करके पच्चक्खाण करना।

३ १४ नियम आज दिनगत, तथा रात्रिगत प्रमाण-मर्यादा के अन्दर धारकर रोज-सुबह शाम देशावकाशिक पच्चक्खाण करना ।

४ यह दसवां व्रत लेना हमेशा के लिए है । परन्तु धारना रोज की परिस्थिति के अनुसार । अतः अन्य व्रत लेने वालों के लिए दशवां तो लेना ही पडता है । अन्य व्रतों के संक्षिप्तीकरण के लिए ।

५ आयंबिल, उपवास, या एकासणा करके १ दिन में ८ या १० सामायिक करके उपर दो प्रतिक्रमण करना । इस तरह वर्ष में १०, २०, १०० बार करना ।

जयणा--- धारणा धारने में कोई भूल या विस्मृति हो उसकी जयणा और अवसर पर प्रायश्चित करके आत्मशुद्धि करना ।

ध्येय-- विरति धर्म के बहुत समीप ले जाने वाला यह व्रत है । अतः जीवन पर्यन्त की या अमुक वर्ष की अवधि तक लिए हुए व्रतों का भी संक्षिप्तीकरण तथा शुद्धिकरण यह व्रत करता है । अधिक पापों में से बचाकर आत्मा की पापों से रक्षा करता है । आत्मा को अधिक उपयोगवन्त बनाना है । आनन्द-कामदेवादि महा श्रावकों की तरह उच्च कक्षा के श्रावक बनने का ध्येय रखना चाहिए ।

व्रतधारी के लिखने के लिए

(व्रतधारी यहां अपनी विशेष बात लिखें)

३रा शिक्षाव्रत-११ वां पौषधव्रत

आहार-तनु-सत्काराऽब्रह्म-सावद्यकर्मणाम् ।

त्याग पर्व चतुष्ट्यां, तद्विदुः , पौषधव्रतम् ।।

चतुष्पर्व्यां चतुर्तादि-कूव्यापार निषेधनम् ।

ब्रह्मचर्य-क्रिया स्नानादि त्यागः पौषधव्रतम् ।।

पौषध-पोषं=पुष्टिं-- धर्म का अधिकार होने से धर्म की पुष्टि को-धृ धातु-धारण करने अर्थ है । -ध=धरणा करना । धर्माराधना-शुभकरणी से ज्ञान-दर्शन चारित्रादि प्रमुख आत्मा के मूलभूत स्वाभाविक गुणों की पुष्टि हो, वृद्धि हो उसको धारण कराने वाला पौषध है । धर्म संग्रह ग्रंथ के उपरि श्लोक में तथा नीचे के योगशास्त्र के श्लोक में समान बातें कही गई है । (१) आहार (२) शरीर सत्कार (शोभा), (३) अब्रह्म (मैथुन) सेवन (४) तथा सर्व सावद्य (हिंसादि) पाप प्रवृत्ति (व्यापार) का त्याग करके, ८, १४, १५, ३०, आदि चतुष्पर्वी में (चार पर्वों) आदि में दिन-रात की विरति धारण करने को पौषधव्रत कहते है ।

पोषध

४ प्रहर(दिनका) ४ प्रहार(रात्रिका) ८ प्रहार(दिनरातका)

(१) केवल दिन के ४-प्रहर का पौषध लिया जाय वह दिन का पौषध, (२) केवल रात्रि के ४-प्रहर का पौषध लिया जाय वह रात्रि का पौषध, (३) और जो अहोरात्रि= अहो=दिन, रात्रि=रात, अर्थात् दिन-रात का मिलाकर-४+ ४=८ प्रहर का पौषध लिया उसे अहोरात्रि का पौषध कहते है । जैसे सामायिक २ घडी की होती है । वैसे ही सामायिक ४ प्रहर अर्थात् १२ घंटे की हो-- अर्थात् १२ घंटे दिन के या रात के (या २४ घंटे दिनरात के) सामायिक में ही रहना, सावद्य पाप व्यापार का त्याग करके सर्वथा विरति में ही रहना । यह पौषध व्रत है । ऐसा सावद्य पाप प्रवृत्ति के त्याग रूप विरति धर्म की पौषध की आराधना अन्य से बडी-उंची आराधना है। अतः इसमें आहार-शरीर सत्कार शुश्रुषा-शोभा स्नानादि नहीं करना है । व्यापार-धंधा नहीं करना, मैथुन सेवन आदि का इसमें त्याग है । और सावद्य पाप प्रवृत्ति का भी त्याग करना

है । ऐसा त्याग करके महीने की मुख्य ८, १४, १५, ३० इन चतुष्पर्वी के दिन या और भी २, ५, ११, आदि तिथियों में श्रावक अवश्य पौषध व्रत ग्रहण करें । या स्वशक्ति अनुसार वर्ष में २५-५० आदि पौषध करने का नियम करें ।

सूचना-- पौषध तप के साथ ही होता है । अतः पौषधोपवास (पोसहोववास) ऐसा नाम आगम में रखा गया है। अतः उपवास सहित करे तो सर्व श्रेष्ठ है । और शक्ति न हो तो आयंबिल, नीवि एकासणे के साथ पोषध करें, परन्तु इससे नीचे के तप या सर्वथा बिना तपके पौषध नहीं होता है।

पौषध व्रत के नियम---

१ प्रत्येक महिने की ८, १४, १५, ३० आदि पर्वतिथि को पौषध करना ।

२ प्रति महीने कम से कम १ या २ पौषध करना ।

३ वर्ष के (२५-५०)........... इतने पौषध करना ।

४ पर्युषण में ६४ प्रहरि (८ दिन के) पौषध करना ।

५ ज्ञानपंचमी, मौनएकादशी आदि वार्षिक पर्वदिन में पौषध अवश्य करना ।

६ आयंबिल की ओली या चौमासी चौदश, तथा पूनम आदि पर्वों में पौषध जरूर करना ।

७ पौषध लेकर दिन में सोना नहीं ।

८ पौषध में स्वाध्याय-पाठ-अभ्यास, जाप-ध्यान, काउस्सग्गादि करना ।

९ सोने के संथारे में अधिक उपकरण न वापरना ।

१० पौषध में विकथा, व्यापार, निंदा प्रपंच न करें ।

पौषध व्रत के ५ अतिचार---

संथारूच्चारविही, पमाय तह चेव भोयणाभोए ।

पोसहविहि विबरीए, तइए सिक्खावए निंदे ।।

१ संथारा, चक्षु से देखकर बरोबर पडिलेहणादि न करके बिछाना करना-बैठना आदि अतिचार है ।

२ संथारा भूमि आदि बिना प्रमार्जे या जैसे, पूंजकर या बिना पूंजे करना-बैठना, सोनादि में अतिचार है ।

३ २४ मांडला की प्रमार्जित भूमि में स्थंडिल-मात्रादि के लिए जाते समय जीव जंतुओं का ध्यान न रखा, वसति शुद्ध न देखी हो तो अतिचार लगता है ।

४ लघु नीति, बडीनीति की भूमि की दृष्टि प्रमार्जना आदि न करते हुए, या अप्रमार्जित भूमि में करना आदि अतिचार है ।

५ आहारादि के त्याग पूर्वक ४ प्रकार के पौषधादि विधि पूर्वक न करके अविधि से पौषध करना, देह चिंता, पारणा की चिंता, आदि अवधि करने से यह अतिचार लगता है।

उपरोक्त पांचो अतिचार न लगे ऐसा पौषध करना ।

जयणा--- पौषध लेने-तथा पारने का निश्चित समय ध्यान रखना । अचानक अकस्मात आदि कारण से या अचानक रोगी बनने से, या अचानक ओपरेशन कराना पडा, अस्पताल में भर्ती होना पडा, या किसी की मृत्यु आदि के प्रसंग पर शिघ्र जाना पडा ऐसी परिस्थिति में पर्व तिथि नियमानुसार आई और पौषध नहीं हो सका तो जयणा । वह रहा हुआ पौषध अनुकूलतानुसार आगे वाली पर्वतिथि, या अगले महिने कर

लेना चाहिए । ऐसी जयणा रखनी परन्तु सर्वथा आराधना नहीं छोड देनी चाहिए ।

ध्येय--- श्रावक श्रमणोपासक कहलाता है । श्रमण= साधु को कहते है । श्रमणपना=साधुपना का उपासक श्रावक मन में सदा साधुत्व प्राप्त हो ऐसी इच्छा रखता है । अतः वह जब तक सर्व विरतिपना न मिले वहां तक श्रावक जीवन में भी साधु धर्म की पालना सामायिक-पौषध से बार-बार करता है । चारित्र के अभ्यास के लिए यह पौषध है। भरत-चक्रवर्ती और सूर्ययशाराजा आदि आदीश्वर भगवान की परम्परा में अनेक पौषध करते थे । आनन्द, कामदेव श्रावक, सुलसा आदि श्राविका भी काफी प्रशंसनीय पौषध करती थी । अतः श्रावक जीवन में साधुत्व के आस्वाद के रूप में यह पौषध व्रत जो आत्मा में पंचाचार धर्म ज्ञानदर्शनादि आत्मगुणरूप है उनकी पुष्टि वृद्धि करता है । कर्म निर्जरा कारक है अतः इस ध्येय से पौषध अवश्य करना चाहिए ।

व्रतधारी के लिखने के लिए
(व्रत लेने वाले यहां अपनी विशेष बात लिखें)

१२वां(४ था शिक्षाव्रत)अतिथि संविभाग व्रत

आहार-वस्त्र-पात्रादेः,प्रदानमतिथेर्मुदा ।

उदीरिते तदतिथि-संविभाग व्रतं जिनः ।।

दानं चतुर्विधाहार-पात्राच्छादन सद्मनाम ।

अतिथिभ्योऽतिथि संविभाग व्रतमुदीरितम् ।।

--- पूज्यभाव, भक्तिभाव पूर्वक सन्मान से अतिथिरूप साधु संत महात्माओं को हर्ष सहित आहार, वस्त्र, पात्र आदि का दान करना यह बारहवां अतिथि संविभागव्रत कहलाता है। यही बात योगशास्त्र में भी कही गई है कि-अतिथि-मुनि-भगवंतों को आहार-पात्रादि चार प्रकार के साधनों को देना प्रदान करना यह अतिथि संविभाग व्रत कहलाता है ।

अतिथि=अ+तिथि- जिसके आने की कोई निश्चित तिथि नहीं है । ऐसे साधु-मुनिराज । विहारार्थ, गोचर्यार्थ निकले हैं पर कब किस तिथि (दिन) को किसके यहां आएंगे यह कुछ भी निश्चित नहीं है ऐसे अतिथि साधु-मुनिराज को

संविभाग=समान भाग करके अपने आहार-वस्त्र-पात्रादि अर्पण करना, वहेराना आदि यह इस १२ वें व्रत का स्वरूप है । इस व्रत के आचरण-पालन की परम्परा यह है कि......८प्रहर (१ दिन रात) का पौषध करके चतुर्थभक्त उपवास का तप करके, दुसरे दिन पौषध के पारणे के दिन, एकाशन का व्रत करके साधु मुनिराजों को पडिलाभे, आहारादि वहेराए और अतिथि महात्मा ने जितनी वहेरी है उतनी ही स्वयं वापरना यह अतिथि संविभाग व्रत है । इस तरह यह व्रत वर्ष मैं १०-२०-५० बार जितनी बार करना हो वह संख्या (.............) अपने मन में धारनी और यह व्रत उच्चरना । तथा उपरोक्त विधि पूर्वक धारी हुई संख्यानुसार यह व्रत पालना संभव है कि शायद वर्ष भर में साधु मुनिराज का योग ही न मिले तो साधर्मिक (स्वधर्मी) बंधु को भोजनादि कराके इस व्रत का पालन करें ।

इस व्रत के ५ अतिचार

सच्चित्ते निक्खिवणे, पिहिण ववएस मच्छरे चेव ।

कालाइक्कमदाणे, चउत्थे सिक्खावए निंदे ।।

१ **सचित्त निक्षेपण** - वहोराने योग्य पदार्थों की सचित्त कच्चे पानी आदि पर रख देनी, अचित्त को सचित्त के साथ मिश्रित करनी और न वहेरानी यह प्रथम अतिचार है ।

२ **सचित्त पिधान**-- वहोराने योग्य अचित्त किए हुए फलादि पर ढांकने आदि हेतु से सचित्त को उपर ढंक देना, रख देना, आदि अतिचार है ।

३ **पर व्यपदेश**-- दान के भाव न होने के कारण अपनी वस्तु को भी पराई कहकर न वहेराना भी अतिचार है ।

४ **मात्सर्यबुध्धि पूर्वक दान**-- मुनिजन को खपे ऐसी योग्य वस्तु वहेराने में क्रोध-तथा मात्सर्यादि रखे तो वह भी अतिचार है ।

५ **कालातिक्रम**-- गोचरी वहेराने का काल बीत जाने पर अब अकाले गोचरी वहेराने का आग्रह करना यह भी दोष है।

इन अतिचारों को जानकर इनका सेवन न करना और शुध्ध भाव पूर्वक सुपात्रदान देने के भावुक बनना हितावह है।

जयणा--- इस व्रत में जयणा नहीं रखनी है । क्यूंकि वर्ष भर के ३६५ दिन में किसी भी दिन कर सकते है । और १०-२० बार करने के पच्चक्खाण हो तो बिमारी आदि के कारण कभी भी आगे पीछे कर सकते हैं । अतः ज़यणा की आवश्यकता नहीं है । फिर भी लम्बी बिमारी में जयणा या लम्बे अरसे के लिए देशान्तर गए तो जयणा । लेकिन व्रती अपनी धारणा को आगे पूरी करने की भावना रखे ।

ध्येय--- अनादि-अनन्त काल से जीव के लेने के ही संस्कार बने हुए है । अब इस व्रत के पालने से देने के संस्कार बनें इस ध्येय से यह व्रत उपयोगी होगा । शालिभद्रादि के जैसा उत्तम पुण्यानुबंधी पुण्य उपार्जन करने का ध्येय रखें । नयसार ने मुनिजन को जंगल में दान दिया और सम्यक्त्व पाया और आगे जाकर २७ वें भव में अंतिम तीर्थंकर महावीर स्वामी बना । धनसार्थवाह ने साधु मुनिराजों को घी का दान दिया और सम्यक्त्व पाकर १३ वें भव में ऋषभदेव भगवान बना । नाशवंत लक्ष्मी का सुपात्र में सदुपयोग करके जीवन सफल बनावें ऐसे पवित्र ध्येय से यह व्रत अवश्य आचरें ।

व्रतधारी के लिखने के लिए

(व्रतधारी यहां अपनी विशेष बात लिखें)

बारह व्रत के १२४ अतिचार

पांच अणुव्रत--		अतिचार संख्या
१ स्थूल प्राणातिपात विरमण व्रत	---	५
२ स्थूल मृषावाद विरमण व्रत	---	५
३ स्थूल अदत्तादान विरमण व्रत	---	५
४ स्थूल मैथून विरमण व्रत	---	५
५ स्थूल परिग्रह परिमाण व्रत	---	५
३ गुणव्रत		
६ दिक् परिमाण व्रत	---	५
७ भोगोपभोग परिमाण व्रत	---	२०
८ अनर्थदंड विरमण व्रत	---	५
४ शिक्षाव्रत		
९ सामायिक व्रत	---	५
१० देशावकाशिक व्रत	---	५

११ पौषधोपवास व्रत	---	५
१२ अतिथि संविभाग व्रत	---	५
□ ज्ञानाचार	---	७
□ दर्शनाचार	---	८
□ चारित्राचार	---	८
□ तपाचार	---	१२
□ वीर्याचार	---	३
□ सम्यक्त्व	---	५
□ संलेषण	---	५
१२ व्रत के कुल अतिचार	---	१२४

उपरोक्त सम्यक्त्व मूल बारह व्रत के १२४ अतिचारों को जान लेना, और उन अतिचारों (दोषों) से बचने का पूरा उपयोग रखना यही धर्म है। इन्ही १२४ अतिचारों को संकलित करके श्रावक के योग्य वंदित्तु सुत्र बनाया है। जिसका रोज के प्रतिक्रमण में उपयोग होता है। और इन्ही १२४

अतिचारों के वंदित्तु सूत्र के आधार पर श्रावक के बडे अतिचार बनाए गए है । जिसको पक्खी-चौमासी-संवच्छरी के दिन प्रतिक्रमण में बोले जाते है । और क्षमायाचना की जाती है। माफी मांगी जाती है । व्रतधारी आराधकों को इन व्रतों से बचने का पूरा ध्यान रखना चाहिए । अतिचारों (दोषों) के भय से व्रत न लेना । यह सबसे बडा अतिचार है । सबसे बडी भारी भूल है । अतः व्रत लेकर अपना जीवन सफल-धन्य बनाना ही लाभकारी- हितकारी है । भवभीरू आत्माओं को चाहिए कि अपने व्रत रूपि रत्न को इस अतिचार रूपि जंक लगी डब्बी में न रखें । व्रत के खपी आराधक भाव वाले शुद्ध साधक बनें । सच्चे मोक्ष मार्ग के खपी बनें ।

धर्मकरणी जिनशासन की प्रभावना तथा रक्षा एवं शासनोन्नति के लिए गीतार्थों की प्रेरणानुसार शुभ कार्य शुभ हेतु से, शुभ भाव से करता रहे और अनेक भव्यात्माओं को उंचे व्रतधारी श्रावक बनाओ ।

किसी भी प्रकार की भूलें हो गई हो तो उसे लिखकर गुरूमहाराज के पास उसका प्रायश्चित लेकर वह प्रायश्चित्त पूरा करके पुनः पवित्र-शुद्ध बनना ।

व्रतों का पालन करते हुए मूलव्रत या उत्तरव्रत या छोटे नियमों में विस्मृति या अन्जान से हुई भूलों (अतिचारों) की यादी (यहां व्रतधारी अपनी भूलों को लिखें)

व्रतों का पालन करते हुए मूलव्रत या उत्तरव्रत या छोटे नियमों में विस्मृति या अन्जान से हुई भूलों (अतिचारों) की यादी (यहां व्रतधारी अपनी भूलों को लिखें)

व्रतों का पालन करते हुए मूलव्रत या उत्तरव्रत या छोटे नियमों में विस्मृति या अन्जान से हुई भूलों (अतिचारों) की यादी (यहां व्रतधारी अपनी भूलों को लिखें)

भूलों के प्रायश्चित्त स्वरूप गुरुमहाराज ने दी हुई

---आलोचना--- (प्रायश्चित)

व्रतधारी ने अपने जीवन में की हुई विविधत तश्चर्या की यादी यहां लिखें, तपुश्चरने की भावना रखकर नाण समक्ष सभी तपुश्चरने चाहिए ।

श्रावक के २१ गुण

१ अक्षुद्रवृत्ति-उदार दिलवाला हो २ स्वरूपवान ३ प्रकृतिसौम्य-शांतस्वभावी ४ लोकप्रिय ५ अक्रूर-क्रूर-हिंसक वृत्ति वाला न हो ६ पाप भीरू ७ अशठ-ठग वृत्ति वाला न हो ८ लज्जाशील ९ दयालु १० माध्यस्थ-भावना वाला हो ११ सदाक्षिण्य १२ गुणानुरागी १३ सत्यवादी १४ सुपक्षयुक्त-सुशील परिवार युक्त १५ दीर्घदर्शी १६ विशेषज्ञनिपुण १७ वृद्धानुगामी-बडे वृद्धों के मार्ग पर चलने वाला १८ विनीत-नम्र १९ कृतज्ञ-उपकार स्मृति में रखने वाला हो २० परोपकारी परहितकारी २१ लब्धलक्ष्य-सर्व धर्म कार्य में सुशिक्षित हो ध्येय सिद्धयर्थ साधना करे । इस प्रकार के उपरोक्त २१ गुण श्रावक के है । प्रत्येक श्रावक सर्वगुण संपन्न बनने का प्रयत्न करे ।

साधक के लिए गुणों की पूरी आवश्यकता है । उपरोक्त २१ गुणयुक्त श्रावक बने तो वह स्व और धर्म उभय की प्रशंसा कराता है । अच्छेगुणवान बनने के लिए इसे गुणों को जीवन में विकसाएं ।

भाव श्रावक के १७ लक्षण

अनर्थ त्यागी-- १ स्त्री, २ इन्द्रिय, ३ धन-पैसा, ४ संसार, ५ विषय (काम वासना), ६ आरंभ, ७ दृश्य पदार्थ, ८ घर, ९ गतानुगतिकता, इन सभी के अनर्थों का त्यागी, इनके दूषणों से बचने वाला, इनका सदुपयोगी, १० आगम पुरस्सर प्रवृत्ति-शास्त्रोक्त आज्ञा पालक, ११ यथा-शक्ति-दान-शील-भावना करने वाला, १२ शुद्ध विधिकारक १३ अरागी अद्वेषी-अत्यन्त अल्प राग-द्वेष वाला, १४ माध्यस्थादि भावना वाला, १५ अनासक्त (विरक्त-वैराग्य वृत्ति वाला), १६ परार्थकारी-परोपकारी १७ घरादि का मोह न रखनेवाला ।

उपरोक्त गुणों तथा लक्षणों को जानकर शास्त्रविहीत आदर्श कोटि का शुद्ध सुश्रावक बनने का प्रयत्न करना हितावह है । गुण (लक्षण) दो प्रकार के है । कुछ बाह्य है । २१ गुण बाह्य है । जबकि उपरोक्त १७ लक्षण भाव लक्षण (गुण) है। बाह्य २१ आने के बाद भी इन १७ की आवश्यकता रहती ही है । अतः ये भी विकसाएं ।

❄ नियम डायरी ❄

हिन्दी और गुजराती

यदि आप आज बारह व्रत स्वीकार करने में असमर्थ हैं तो..... इस संस्था की तरफ से प्रकाशित छोटी पोकेट साइज की " नियम डायरी " लेकर पढें । नियम डायरी हिन्दी में और गुजराती दोनों भाषा में छपवाई गई है । जो सभी को निःशुल्क भेट दी जाती है ।

आप भी संस्था के पत्ते पर से यथाशीघ्र पोस्ट से या प्रत्यक्ष मिलकर मंगा सकते हैं । इसमें बालक, युवक, महिला, युवतियां, प्रौढ, बडे, वृध्द आदि सभी वर्ग के लिए उपयोगी छोटे छोटे नियम लिखे गए हैं । आप अवश्य पढिए । पढते ही काफी नियम लेने की इच्छा हो जाएगी ।

साथ ही डायरी पध्दति की इस छोटी सी पुस्तिका में स्मृति हेतु लिखने की भी पूरी व्यवस्था है । नियम लेकर, नियमों को दृढता पूर्वक पालते हुए जीवन नियमित संयमी बनाने का प्रयत्न करें । पापों से बचकर धर्मप्रवृत्ति करते हुए जीवन सफल बनाएं ।

जैन धर्म के अभ्यासार्थ ---

पू. पंन्यासजी श्री अरुणविजयजी महाराज
की कलम से लिखा गया
चिन्तनात्मक साहित्य बसाइए .... पढिए ....

★ कर्म तणी गति न्यारी..... (गुजराती)
★ भावना भव नाशिनि..... (गुजराती)
★ सचित्र गणधरवाद..... (गुजराती) भाग १,२
★ पाप नी सजा भारे..... (गुजराती) भाग १,२
★ कर्म की गति न्यारी..... (हिन्दी) भाग १
★ नवकार महामंत्र का
अनुप्रेक्षात्मक विज्ञान..... भाग १ (प्रेसमें)
★ पाप की सजा भारी ..... (हिन्दी) भाग १,२
★ नवकार महामंत्र नुं अनुप्रेक्षात्मक विज्ञान...(गुज.) भाग १
★ प्रमाणनयतत्त्वालोक (संपादन)
★ उपासक दशांग (आगम शास्त्र (हिन्दी) भाग १,२
★ निरयावलिका सूत्र (आगम क्षात्मक विज्ञान...(गुज.) भाग १
★ विपाकसूत्र - (आगम शास्त्र)
★ अनुत्तरोपपातिक दशांग सूत्र
★ अंतःकृद्दशांग सूत्र - (आगम (हिन्दी) भाग १,२
★ श्री भगवती सूत्र - प्रताकार ात्मक विज्ञान...(गुज.) भाग १

IVO 11/92